अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-40, अंक-05, 16-31 अक्टूबर, 2016

लोकमान्य से लोकनायक

राष्ट्रीय इतिहास की एक परम्परा के जयप्रकाश उत्तराधिकारी हैं, लेकिन उस परम्परा को प्रस्थापित किया और उसकी प्राण प्रति ा की लोकमान्य तिलक ने -दादा धर्माधिकारी

गांधी और अम्बेडकर

नवरत्नों की जोड़ी

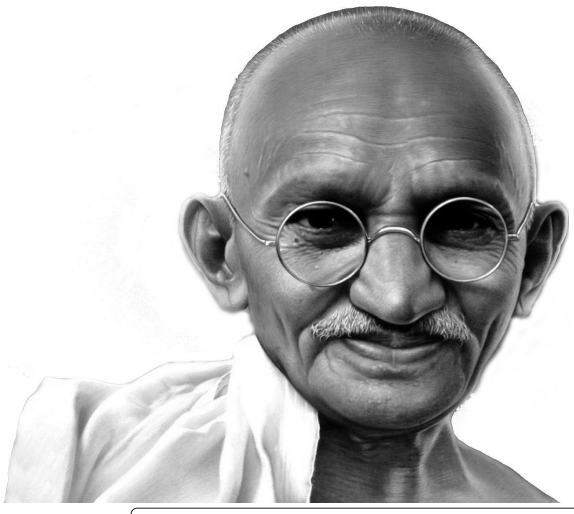

दीवाली फिर आ गयी सजनी! - रामबृक्ष बेनीपुरी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुखपत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 40, अंक : 05, 16-31 अक्टूबर, 2016

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. कश्मीर में तीसरा विकल्प... 2
2. लोकमान्य से लोकनायक... 3
3. महात्मा का अध्यात्म... 5
4. गांधी-अम्बेडकर : नवरत्नों की जोड़ी... 7
5. संस्मरण : चम्पारण सत्याग्रह... 8
6. वर्तमान परिस्थिति में गांधी-विचार की... 9
7. गांधी की शिक्षा और शोषण-विहीन... 10
8. हमारा प्रिय कश्मीर... 12
9. दीवाली फिर आ गयी सजनी!... 13
10. सुगंध का चर्मलेख... 16
11. विश्व की भलाई की चिन्ता करता... 18
12. गांधीजनों ने मनायी जेपी जयंती... 19
13. दोहा : पर्यावरण... 20

संपादकीय

कश्मीर में तीसरा विकल्प

कश्मीर का मसला शासन के स्तर पर सुलझने का नाम नहीं ले रहा है। आजादी के तुरंत बाद कश्मीर भारत के साथ कैसे जुड़ेगा, इनको सुलझाने की कोशिशें चल ही रही थीं कि कबायलियों की आड़ में पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। कश्मीरियों ने उनका जमकर विरोध किया, किन्तु पाकिस्तान की सेना आगे बढ़ती जा रही थी। इन परिस्थितियों में कश्मीर के महाराजा हरी सिंह ने शेख अब्दुल्ला के दबाव व माध्यम से भारत में विलय का समझौता किया। इसके साथ ही कश्मीर भारत का अंग हो गया और भारतीय सेना ने पाकिस्तानी सेना को पीछे ढकेलना शुरू कर दिया।

इसमें दो-तीन बातें याद रखने की हैं। पाकिस्तान आक्रमणकारी था। कश्मीर की जनता ने आक्रमण का विरोध किया तथा कश्मीर भारत के साथ कैसे जुड़ेगा, यह प्रक्रिया इसमें से तेज हो गयी तथा तत्काल समझौता हो गया। कश्मीर की विशेष स्थिति को भारत ने संविधान की धारा 370 के अंतर्गत स्थान दिया।

पाकिस्तान ने तब भी कबायलियों को आगे कर युद्ध को आगे बढ़ाया था, पाकिस्तान आज भी आतंकवादियों को आगे कर युद्ध को आगे बढ़ रहा है। भारत की कमी शासकीय व रणनीतिक स्तर की रही है। कश्मीर में लोकतंत्र को मजबूत करने का काम नहीं हुआ। लोक कल्याण के कार्य नहीं हुए तथा लोक भागीदारी तो दूर का सपना हो गयी।

जम्मू एवं कश्मीर राज्य भारत के सर्वधर्म समभाव की भावना व चेतना का प्रतिनिधित्व करता था। कश्मीर घाटी मुस्लिम बहुल, जम्मू हिन्दू बहुल तथा लद्दाख बौद्ध बहुल क्षत्र हैं। इन तीनों धर्मों के अनुयायियों के बीच सैकड़ों वर्षों से सौहार्द का संबंध रहा है। कश्मीर में सूफियों का प्रभाव, जम्मू में शैव साधकों का प्रभाव तथा लद्दाख में बौद्ध साधकों का प्रभाव रहा। इस कारण धर्म राजनीतिक सत्ता प्राप्ति का माध्यम न होकर, लोक जीवन को संचालित करने के तथा अध्यात्मिकता की ओर उन्मुख थे। अध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होने के कारण ही विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक दूसरे के प्रति प्रेम व सम्मान का भाव रखते थे। हमें याद रखना चाहिए कि मुस्लिम लीग जो अंग्रेजी शासनकाल में अलग पाकिस्तान की मांग कर रहा था, उस मुस्लिम लीग का कश्मीर में शून्य प्रभाव था। जब मुस्लिम लीग ने सीधी कार्रवाई का आहवान किया तो भी कश्मीर के मुसलमानों ने उसे अनदेखा किया। सीधी कार्रवाई के फलस्वरूप देश भर में दंगे भड़के, लेकिन कश्मीर उससे अछूता रहा। कश्मीर के मुसलमानों ने पाकिस्तान की कभी ख्वाहिश नहीं की। घाटी, जम्मू तथा लद्दाख के लोग कश्मीरियत को बचाये रखना चाहते थे—अर्थात अध्यात्मिकता उन्मुख धर्म जीवन तथा सर्वधर्म समभाव।

कश्मीर में धर्म का राजनीतिक इस्तेमाल काफी बाद में शुरू हुआ। और तब धर्म अध्यात्मिकता से विमुख हो, राजनीतिक रणनीतिकारों के रणनीति का हिस्सा बनता चला गया। कश्मीर व कश्मीरियत को बचाना है तो सूफियों और साधकों के प्रभाव वाले कश्मीर को पुनः जीवंत करना होगा।

कश्मीर में संघर्षों की दो धाराएं हैं। एक पाकिस्तान प्रायोजित तथा आतंकवादियों द्वारा क्रियान्वित तथा झूठे दुष्प्रचार द्वारा वहां के लोगों के दिमाग में जहर भरने वाली धारा। दूसरी लोक संघर्षों की तथा लोक संघर्षों द्वारा अपने अधिकारों को पाने की चाहत रखने वाली धारा। यह धारा कहीं बड़ी है। किन्तु पाकिस्तान प्रायोजित व समर्थित समूह हर विरोध को इस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जैसे वह पाकिस्तान के पक्ष में है। शासन, पुलिस व सेना भी इनमें फर्क नहीं कर पाती है, इस कारण स्थिति और बिगड़ती जाती है। कश्मीर के बाहर भी हमने देखा है कि जन-संघर्षों के उभार के बाद स्थिति अक्सर दो कारणों से बिगड़ जाती है—एक पुलिस द्वारा हिंसा बल से उसे दबाने की कोशिश से तथा दूसरे जन संघर्षों के अंदर उनके घुस जाने से जो शांतिमय जन संघर्षों के बजाय हिंसा पर विश्वास रखते हैं।

सर्वोदय के तथा शांतिमय जन संघर्षों के अन्य समूहों को कश्मीर के आंदोलनकारियों की उस धारा से संपर्क बनाना होगा जो लोक अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। उन्हें समझाना होगा कि वे देश में चल रहे अन्य जन-संघर्षों से जुड़े और इन जन संघर्षों के माध्यम से एक नयी भारतीय अस्मिता एवं कश्मीरी अस्मिता के काम को आगे बढ़ायें। उन्हें भारतीय शासकों एवं आतंकवादियों में से एक को नहीं चुनना है, बल्कि एक तीसरा विकल्प सम्भव है, उसके लिए कार्य करें। बिमल कुमार

विरासत

लोकमान्य से लोकनायक

❑ दादा धर्माधिकारी

'राष्ट्रीय इतिहास की एक परम्परा के जयप्रकाश उत्तराधिकारी हैं। लेकिन उस परम्परा को प्रस्थापित किया और उसकी प्राण प्रतिष्ठा की लोकमान्य तिलक ने।'

बैठे-बैठे मुझे एक कविता याद आयी कि 'जिसके पास गिनने के लिए कुछ नहीं होता है वह अपने वर्ष ही गिना करता है।' क्या जयप्रकाश उन मनुष्यों में से हैं, जिनके वर्ष ही गिनने चाहिए? 75 साल के हो गये, कौन-सा बड़ा पराक्रम किया? मैं तो उनसे तीन-चार साल बड़ा हूं। 'काकोडपि जीवति चिरं...' कौआ बलिदान का भात खाकर कई वर्ष जीता रहता है। मित्रो, हम जयप्रकाश की उम्र के वर्ष गिनने के लिए इकट्ठा नहीं हुए हैं। शंकराचार्य ने कहा है—'काल क्रीड़ति गच्छत्यायुः, काल का खेल होता है, हमारी जान जाती है। लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो कालातीत होते हैं। उनके शरीर में, कौमार्य-यौवन-जरा, इनमें से कोई अवस्था नहीं होती। उनका सतत विकास ही होता चला जाता है। बहुत साल पहले एक किताब मैंने पढ़ी थी—'द आउट साइडर', कुछ व्यक्ति इतिहास, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संस्कारों से परे होते हैं। ऐसे व्यक्ति वृद्ध होते हैं, लेकिन जरा उनको नहीं छूती, उनका जीवन क्षीण कभी नहीं होता। ऐसी व्यक्तियों में जयप्रकाश हैं।

हमारे देश के राष्ट्रीय इतिहास की एक परंपरा के जयप्रकाशजी उत्तराधिकारी हैं। उस परंपरा के आरम्भ का विचार मैं नहीं कर रहा हूं। लेकिन उस परंपरा को प्रस्थापित किया और उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की लोकमान्य तिलक ने। 'भगवद् गीता रहस्य' लिखा तो सवाल था कि उसे किसे समर्पित किया जाए? ईश्वर के किस स्वरूप को समर्पित करूं? राम को समर्पित करूं? धनुर्धारी राम, श्मशानवासी गिरिजापति या चक्रधारी श्रीकृष्ण—इनमें से किसको मैं यह ग्रंथ समर्पित करूं? मांडले के जेल में गीता रहस्य लिखा, और समर्पित किसे किया? 'समर्पये ग्रंथमिमं श्रीशाय जनतात्मने।' यह ग्रंथ मैं समर्पित करता हूं भगवान को, लेकिन किस रूप को, 'जनतात्मने', भगवान के जनतात्मा के रूप को समर्पित करता हूं। *जनतात्मा का आह्वान किया, जनतात्मा की उपासना की, जनतात्मा में ही अपनी सारी निष्ठा समर्पित की। इसलिए बाल गंगाधर तिलक लोकमान्य बने। हमारे देश के प्रथम लोकमान्य। जनशक्ति का, लोकशक्ति का आह्वान किया। राजशक्ति के मुकाबले में लोकशक्ति को खड़ा करने की चेष्टा की। मैं इसे लोकमान्य तिलक की विशेषता मानता हूं। हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए उनका यह विशेष योगदान है।* वे किसी के प्रतिनिधि नहीं थे। चुनाव में तो खड़े हुए थे, लेकिन लोकमान्य बनने से पहले। लोकमान्य जब बने तो फिर कभी वे चुनाव के लिए खड़े नहीं हुए। मैं छोटा था, वे नागपुर में आये थे। तो लड़कों से कहा गया, सवाल पूछो। लड़के घबराते रहते हैं, ऐसे समय। मैं भी घबराया, लेकिन स्कूल में बहुत बात करता था, इसलिए लड़के चिढ़ाने लगे, अब क्यों चुप है? सवाल क्यों नहीं पूछते? मैंने पूछा—*लोकमान्य बनने के लिए क्या करना चाहिए?* लोकमान्य, लोकमान्य ही थे। उन्होंने मुझे जवाब दिया, *'लोकमान्य बनने की इच्छा छोड़नी चाहिए।'* अब यह उत्तर तो लोकमान्य ही दे सकते थे। कोई प्रत्याशी नहीं होगा, कैंडिडेट नहीं होगा, उम्मीदवार नहीं होगा, तब वह लोकमान्य होगा। *'नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने, विक्रमार्जित-सत्वस्य स्वयमेव म गेद्रिता।'* सिंह का कोई जंगल में अभिषेक नहीं होता, संस्कार नहीं होता, उसका निर्वाचन नहीं होता। 'विक्रमार्जितसत्वस्य' अपने विक्रम से जो सत्य उसमें आता है, उसके कारण 'स्वमेव म गेद्रिता'—वह सब जानवरों का राजा बन जाता है। यहां राजा नहीं, नेता भी नहीं, उनका प्रतिनिधि बनता है। प्रतिनिधि-अनभिषिक्त। जिसका अभिषेक नहीं हुआ है, निर्वाचन नहीं हुआ है। यह परंपरा हमारे देश में लोकमान्य ने कायम की।

लोकमान्य के उत्तराधिकारी गांधी थे। गांधी के विषय में यह माना आता है कि वे लोकमान्य के प्रतिपक्षी थे, प्रतिस्पर्द्धी थे, लोकमान्य के अनुयायी नहीं थे। अनुयायी तो थे ही नहीं, परंतु उत्तराधिकारी थे। 1920 में जिस दिन लोकमान्य का देहांत हुआ, उसी दिन गांधी के असहयोग का आविर्भाव हुआ। हमारे राष्ट्रीय जीवन के इतिहास में यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इसके पीछे भी कोई योजना रही होगी। लेकिन यह घटना एक संयोग की घटना अवश्य थी। एक तत्त्वज्ञानी ने लिखा है—'संयोग किसे कहते हैं?—कुछ साहित्यिक उपनाम लिखा करते हैं। तो भगवान भी कभी-कभी तखल्लुस, उपनाम ले लेते हैं। अपने दस्तखत जब ईश्वर को नहीं करने होते तो वह अपने को 'संयोग' कहता है।' इस तरह यह संयोग की घटना है। गोखले और तिलक दोनों के उत्तराधिकारी गांधी थे। लेकिन वे 'सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया' के सदस्य नहीं बन सके और लोकमान्य तिलक के जो अनुयायी थे उनकी मंडली में भी नहीं बैठ सके। उन्होंने उनका विरोध किया।

शिष्य, अनुयायी और उत्तराधिकारी में यह अंतर होता है—उत्तराधिकारी लीक नहीं पीटता, पुराने रास्तों पर नहीं चलता। दिशा जानता है, मकसद, मुकाम जानता है। वहां पहुंचने के लिए नये रास्ते खोजता है। नई पगडंडियां बनाता है। यह उत्तराधिकारी का

पराक्रम होता है। *गांधीजी ने तिलक की दिशा को समझ लिया कि लोकात्मा का आह्वान करना है, लोकात्मा को जागृत करना है और इस देश के साधारण नागरिक में पुरुषार्थ की प्रेरणा जगानी है।* प्रेरणा उत्पन्न नहीं करनी है, निर्माण नहीं करनी है, निर्माण कोई नहीं कर सकता। जो सुप्त है, उसको जगाना है। *लोकमान्य को तो वेलेन्टाईन चिरोल ने 'फादर ऑफ इंडियन अनरेस्ट' कहा, लेकिन यह गलत है, 'द व्हाईस ऑफ इंडियन अनरेस्ट' कहना चाहिए। हमारे देश में जो असंतोष था उसको उन्होंने मुखारित किया। गांधी उसके उत्तराधिकारी के रूप में आये और लोकमान्य के मार्ग को प्रशस्त किया। उसको लोकसुलभ बनाया।*

गांधी के वक्त इस देश की क्या स्थिति थी? भूखा देश था, निहत्था देश था, हताश था, हतवीर्य था। ऐसे देश में पराक्रम की प्रेरणा जागृत करनी थी। भूख में से शक्ति पैदा करनी थी। निःशस्त्र में से पुरुषार्थ पैदा करना था। वह दिव्य दृष्टि लेकर गांधी आये। उन्होंने कोई तर्क नहीं किया कि वह निहत्थे, हतवीर्य और निराश लोगों का देश है, इसमें से कैसे पुरुषार्थ जागृत करूं? नहीं, यह सवाल ही उनके सामने नहीं आया। बस, करना है। और अपने अनुभवों से आगे चले। लोकमान्य तिलक और गोखले एक-दूसरे के विरोधी माने जाते थे। लेकिन गोखले ने कहा—'मैं राजनीति में आध्यात्मिक मूल्यों को दाखिल करूंगा', और तिलक ने कहा—'इस देश के सामान्य मनुष्य को जागृत करूंगा।' दोनों के संकल्पनों के उत्तराधिकारी गांधी आए। मैं समझता हूं राजनीति में कोई सौजन्य लाया हो तो गांधी लाए हैं—गोखले के उत्तराधिकारी, और सारे देश को जागृत किया। कैसा अद्‌भुत दृश्य था?

चुनाव हुए तो लोगों से कहा, इस चुनाव में हमको हिस्सा नहीं लेना है। क्या चुनाव हुआ? कहीं एक प्रतिशत मतदान हुआ तो कहीं आधा प्रतिशत। ऐसा अभूतपूर्व दृश्य गांधी के पहले किसी ने नहीं दिखाया था। लोकमान्य ने बहिष्कार कहा, गांधी ने कहा—असहयोग।

इसी परम्परा में से गांधी के बाद विनोबा आये। प्रकृति भिन्न। भूमिका भी भिन्न। लेकिन उत्तराधिकारी थे। 'मैं सहयोगात्मक क्रांति कराऊंगा'—विनोबा ने कहा। समाज परिवर्तन होगा, मनुष्यों के सहयोग से। अभूतपूर्व प्रयोग था। देश के इतिहास में किसी ने ऐसा साहस नहीं किया था। गांधीजी को लोगों ने मूर्ख कहा ही था। उसके बाद विनोबा को मूर्खतर कहा। गांधी के बारे में लॉर्ड रीडिंग ने कहा था—'दुनिया में जितनी मूर्खता की योजनाएं हो सकती हैं, उससे अधिक मूर्खता की योजना गांधी की है।' उस वक्त मुम्बई का गवर्नर था, सर जॉर्ज लॉईड। उसने लिखा—'यह आदमी—गांधी, सफलता के बहुत नजदीक पहुंच गया था, थोड़ी-सी ही कसर रह गयी थी। तो यह मूर्खतापूर्ण योजना सफलता तक पहुंच चुकी थी। विनोबा ने प्रयोग किया, सहयोगात्मक क्रांति का। लोग कहते हैं, विनोबा असफल हुए। मैं उन व्यक्तियों में से हूं जो यह मानते हैं कि विनोबा का असफल होना दूसरे व्यक्तियों के सफल होने से कहीं अधिक दिव्य और उदात्त हैं।

उसके बाद जयप्रकाश आए। विनोबा के उत्तराधिकारी के रूप में। सोशलिस्टों ने कहा, सर्वोदय वाले से, खुशी की बात है, हमारा जयप्रकाश हमें लौटा दिया, तो आचार्य राममूर्ति ने कहा—लौटाया तो सही लेकिन उसकी लाल टोपी हमने उतार ली है। दूसरी बात जयप्रकाश हमारे पास आये तब वे समाजवादियों के नेता थे और अब जो जयप्रकाश हैं वे लोकनायक जयप्रकाश हैं। वे लोकनायक जयप्रकाश विनोबा की क्रांति से अविमूर्त हुए इसलिए इस देश में एक अभूतपूर्व लोक-जागरण जयप्रकाश उस वक्त उपस्थित कर सके, जिस वक्त हम समझते थे कि देश मृतक की स्थिति में है, अब यह कभी नहीं जागेगा, इस देश की नाड़ियों में अब कोई शक्ति नहीं रह गयी है।

जयप्रकाश जैसे लोगों को देश की नाड़ी का ज्ञान होता है, जो साधारण मनुष्य को नहीं होता। साधारण मनुष्य के भीतर छिपी हुई शक्ति का उनको दर्शन होता है और उस शक्ति का आह्वान निष्ठा के साथ वे कर सकते हैं। इसलिए मैंने कहा कि वे 'आउट साइडर' हैं। ऐसे व्यक्ति समाज, व्यवस्था, हमारा इतिहास और हमारे संस्कारों से भिन्न होते हैं। वे किसी के अनुयायी नहीं होते, उत्तराधिकारी होते हैं। ऐतिहासिक परम्परा में इनका स्थान उत्तराधिकारियों में हैं, अनुयायियों में नहीं। अनुयायी वे होते हैं जो अपने नेता या गुरु की सिर्फ उत्तरक्रिया ही करते हैं।

'लुप्तपिंडोदक क्रिया' जो करते हैं वे अनुयायी होते हैं। उत्तराधिकारी पिंडोदक का अधिकारी नहीं होता है—वह आगे जाता है उसी दिशा में।

जयप्रकाश के नेतृत्व में इस देश में एक अल्पक्रांति हुई। यह क्रांति इसलिए कहलायी कि कभी यह आशा नहीं की जाती थी कि संसदीय पद्धति से क्रांति की भूमिका पैदा हो सकती है। क्रांति के लिए जमीन संसदीय पद्धति से निर्माण की जा सकती है, यह विचार दुनिया में लुप्त हो गया था। इस देश में यह चमत्कार हुआ। लोगों का सत्त्व, जिसमें पैसा, जाति, डंडा किसी का प्रभाव नहीं पड़ा। लोग मुझसे कहते हैं, कुटुंब नियोजन में इतनी ज्यादतियां नहीं होतीं तो लोग इतने जागृत नहीं होते। मैं मानता हूं, लेकिन ज्यादतियों के बाद जागृत क्यों हुए? इसलिए हुए क्योंकि वे समझ गये कि अब हमारे लिए स्वतंत्र जीवन असंभव है। हमारा जीवन स्वायत्त नहीं है, हम अपनी इच्छा से नहीं जी सकते। यह चीज उनके हृदय को छू गयी और मैं इसके लिए इंदिराजी को धन्यवाद देता हूं कि न आपातकाल आता और न यह जनता जागती। न 'जलियांवाला-बाग' होता और न हमारे देश में स्वराज्य का आंदोलन पनपता। इमरजेंसी आयी इसलिए इस देश के साधारण नागरिक में चेतना पैदा हुई। ❑

अध्यात्म

महात्मा का अध्यात्म

❑ सुजाता

''जो व्यक्ति, जिस धर्म में है, उसी धर्म को मानता हुआ दिन-प्रतिदिन बेहतर इंसान होने का प्रयास करता जाये।''

महात्मा गांधी का नाम जेहन में आते ही एक ऐसे व्यक्ति की छवि उभरती है—एक ऐसे राजनीतिक नेता की छवि, जिसने राजनीति जैसे गंदे तालाब में धर्म और नैतिकता का प्रवाह देकर उसे पवित्र पावन गंगा का रूप दे दिया हो।

किन्तु जब संपूर्ण गांधी वाङमय का आद्योपांत अध्ययन और मनन किया, तो मेरी आंखों के सामने एक दूसरे गांधी थे—सिर्फ और सिर्फ एक उच्च कोटि के आध्यात्मिक महापुरुष, जिन्होंने मातृभूमि और मानवता की सेवा करने के लिए ऊपर से राजनीति की चादर ओढ़ रखी थी। वह चादर उनका स्पर्श करके पवित्र तो हो रही थी, किन्तु इस महामानव को अपने में समेटने और लपेटने का साहस नहीं कर सकी।

स्वयं गांधी के शब्दों में, ''मैं हमेशा से यह कहता आया हूं कि मेरे जीवन में धर्म का स्थान प्रमुख है और राजनीति उसकी अनुवर्तिनी है। मेरे राजनीतिक क्षेत्र में आने का कारण यह हुआ कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात सेवामय जीवन को, उससे प्रभावित हुए बिना व्यतीत न कर सका। यदि उससे मेरे धार्मिक जीवन में बाधा पड़े, तो मैं आज ही उसे त्याग दूं।''

महात्मा गांधी ने अपने आचरण से अपने आपको एक ऐसा महामानव बना दिया, जिसने सभी धर्मों के लोगों को अपना मानने पर विवश कर दिया। जब भारत गुलाम था और ईसाई धर्म का बोलबाला था, तो कुछ कट्टर ईसाई, जिनके जीवन का मुख्य उद्देश्य ही धर्मान्तरण था, जान-बूझकर हिन्दू धर्म को एक ऐसे धर्म के रूप में दुनिया में प्रचारित कर रहे थे कि यह जल्दी ही समाप्त हो जाने वाला धर्म है, क्योंकि हिन्दू धर्म का मतलब ही अंधविश्वास, कुरीतियां और पाखंड है। कुछ सज्जन और कम कट्टर ईसाई, जो इस बात में विश्वास करते थे कि हिन्दू धर्म वैसा ही है जैसा उनके धर्मप्रचारक प्रचार करते हैं, किन्तु साथ ही साथ वे यह भी कहते कि यदि हिन्दू धर्म ऐसा बेकार धर्म है तो उसमें महात्मा गांधी जैसे ऊंचे चरित्र का व्यक्ति कैसे है? इसका मतलब निःसंदेह हिन्दू धर्म में अच्छाइयां हैं। यानी गांधी ने अपने चरित्र से पूरी दुनिया के सामने हिन्दू धर्म को सुवासित और सुशोभित किया है। *हम कितनी ही चिल्ला-चिल्ला कर कहें कि गर्व से कहो, ''हम हिन्दू हैं'', लेकिन इससे हम हिन्दू धर्म की सेवा नहीं कर सकते और न गर्व ही कर सकेंगे। हां, दंभ और अहंकार करना जरूर सीख जायेंगे। महात्मा गांधी का मानना था—जो व्यक्ति, जिस धर्म में है, उसी धर्म को मानता हुआ दिन-प्रतिदिन बेहतर इंसान होने का प्रयास करता जाये।*

दुनिया के सारे धर्मावलंबी अपने-अपने धर्म को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं और उन्हें मानना भी चाहिए, किन्तु जब दूसरे के धर्म को कमतर आंका जाता है, तो गड़बड़ होने लगती है। महात्मा गांधी के मन में जितना अपने धर्म के प्रति आदर था, उससे रत्ती भर भी कम दूसरे धर्म के लिए नहीं था। महात्मा गांधी जितना ही अपने आपको धार्मिक गहराई में उतारते गये, उतना ही उनका दूसरे धर्मों के प्रति आदर का भाव बढ़ता गया और साथ ही अपने धर्म के प्रति उनकी आस्था भी दृढ़तर होती गयी।

महात्मा गांधी के उदात्त चरित्र और व्यक्तित्व को देखकर प्रत्येक धर्म का धार्मिक नेता और अनुयायी सोचता था कि काश, यह व्यक्ति उसके धर्म में होता तो दुनिया का सबसे अच्छा व्यक्ति उसके धर्म में होता! एक बार मिशनरियों का एक बड़ा दल गांधीजी से मिलने आया, तो उसी दल की एक महिला ने महात्मा गांधी से पूछा कि पता है, हम लोग आपस में आपके बारे में क्या बातें करते हैं? महात्मा गांधी ने मुस्कुराते हुए कहा—नहीं। महिला ने कहा, यही कि यदि मिस्टर गांधी ईसाई हो जाते, तो धरती का सबसे अच्छा मानव ईसाई है, इस बात का हम गर्व कर पाते। गांधीजी मुस्कुरा कर रह गये क्योंकि उनके लिए प्रशंसा और निन्दा दोनों समान थे। जीवन में कभी भी बाह्य कारणों या परिस्थितियों से वे दुखी या सुखी नहीं होते थे।

इस्लाम धर्म के एक अनुयायी का तो यहां तक मानना था कि वे अंदर से मुस्लिम धर्म को ही मानते हैं, सिर्फ घोषणा नहीं हुई है। जैन धर्मावलंबी तो उन्हें जैन मानते ही थे। बहुत सारे बौद्ध तथा अन्य लोग उन्हें बुद्ध का ही अवतार मानते थे। हालांकि महात्मा गांधी इन बातों का खंडन करते थे और मानते थे कि सभी धर्मावलंबियों का इस तरह सोचने का कारण सिर्फ यह है कि मेरे लिए सभी धर्म समान हैं, मेरा धर्म इतना तंग नहीं कि इसमें दूसरे धर्म का स्थान न हो।

कितनी दुखद बात है कि अपने क्रियाकलाप से हिन्दू धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले एवं विश्व की महान आध्यात्मिक विभूतियों में से एक, महात्मा गांधी को संत नहीं मानकर कट्टर हिन्दू मतावलंबी महज एक राजनीतिज्ञ मानते हैं।

महात्मा गांधी का मानना था कि विश्व के समस्त धर्म स्वयं ईश्वर ने तो नहीं बनाये, हां, ईश्वरीय प्रेरणा से जरूर बने हैं। वह ईश्वरीय प्रेरणा किसी दिव्य व्यक्ति को हुई और उससे पूरी दुनिया में फैली। समय-समय पर दिव्य आत्माएं आती रही हैं। फिर भी उनकी नजर में कोई धर्म पूर्ण नहीं था, क्योंकि सारे

धर्म मनुष्य द्वारा निर्मित हैं, और चूंकि कोई भी मनुष्य खुद पूर्ण नहीं है, इसी से उसके द्वारा निर्मित धर्म पूर्ण कैसे हो सकता है? इसी से किसी भी धर्म में जो कुरीतियां, अंधविश्वास और पाखंड हैं, उनका उच्छेदन उस धर्म की रक्षा के लिए ही आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो कोई दूसरा धर्म प्रहार करके उसे नष्ट नहीं करेगा, बल्कि स्वयं उसकी कुरीतियां, अंधविश्वास और पाखंड ही उसे कुतर-कुतर कर खोखला कर देंगे, जिससे वह स्वतः ही धराशायी होकर समाप्त हो जायेगा। इसी से, *यदि कोई व्यक्ति धार्मिक है और अपने धर्म की सेवा करना चाहता है तो अपने धर्म की कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करे, न कि अपने धर्म को लंगड़ा बनाये। हम अपने धर्म की कमजोरियों एवं कुरीतियों के कारण लोगों से आंखें चुराते रहें, सफाई देते रहें या कुंठाग्रस्त होकर झगड़ा करें, मारपीट और क्रोध करें, इससे तो कुछ होने से रहा। आप यह देखें कि आपका दिल क्या कहता है? यदि आपमें मनुष्यता है तो दिल के किसी न किसी कोने से, अन्तरात्मा से यह आवाज जरूर आयेगी कि किसी के दिल को दुखाना धर्म नहीं, अधर्म है।*

''ईश्वर है क्योंकि हम हैं।'' महात्मा गांधी के मन में ईश्वर को लेकर जरा भी शंका नहीं थी कि वे हैं या नहीं। उनका मानना था कि यदि मेरा अस्तित्व है, तो वह भी है। उनका तो यहां तक मानना था कि यदि किसी दिन दुनिया का एक-एक व्यक्ति यह मानने और कहने लगे कि ईश्वर नहीं है, तो भी मैं अकेले एक शिशु की तरह कहता और मानता रहूंगा कि वह है, क्योंकि मैं जानता हूं, वह है।

महात्मा गांधी का ईश्वर न मूर्तियों तक सीमित था, न मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों तक। गीता के नायक पार्थसारथि के कहे अनुसार कि उत्तम कोटि का ज्ञानी भक्त मुझ वासुदेव को सभी प्राणियों में देखता है, महात्मा गांधी भी प्रत्येक जीव में उस ईश्वर का दर्शन करते थे। उनका मानना था कि उस ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। उन्हीं के शब्दों में—''मेरा ईश्वर तो सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है। निर्भयता ईश्वर है। ईश्वर अन्तरात्मा ही है। वह तो नास्तिकों की नास्तिकता भी है। हम कुछ नहीं हैं, सिर्फ वही है और अगर हम हैं, तो हमें सदा उसके गुणों का गान करना चाहिए और उसकी इच्छानुसार चलना चाहिए। आइए, उसकी वंशी की धुन पर हम नाचें। सब अच्छा ही होगा।''

प्रार्थना का महात्मा गांधी के जीवन में वही महत्त्व था, जो व्यक्ति के लिए वायु का होता है या शायद इससे भी बढ़कर। उनका मानना था कि शायद मैं सांस लिए बिना तो कुछ मिनट जी सकूंगा, किन्तु बिना प्रार्थना के एक मिनट भी नहीं। महात्मा गांधी का एक तार उस सर्वोच्च सत्ता से अहर्निश जुड़ा रहता था, फिर भी वे सामूहिक प्रार्थना को बहुत महत्त्व देते थे। एक साथ आसमान के नीचे सिरजनहार की सृष्टि के साथ एकरूप होना, उनके लिए वायसराय के साथ देश की स्वतंत्रता के लिए बातचीत करने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण था।

महात्मा गांधी का प्रार्थना का समय हो गया था और वायसराय की बातचीत अभी समाप्त नहीं हुई थी। प्रार्थना का समय होते ही वे उठ खड़े हुए कि संपूर्ण ब्रह्मांड के मालिक से मिलने का मेरा समय हो गया है।

यह दृष्टांत तथाकथित धार्मिक नेताओं और आमजनों के लिए कितना उपयोगी है? आजकल धार्मिक प्रवचनकर्ताओं तथा साधु-महात्माओं की एक ऐसी फौज जमा हो गयी है, जो अपने बाह्य रूप को रँग कर दंभ के शिकार बन चुके हैं। इन लोगों का यम-नियम भक्तों में पद और पैसा देखकर बदलता है। ये सभी तथाकथित धार्मिक नेता अपने आपको, लोगों को और ईश्वर को छल रहे हैं।

काश! कुछ मुट्ठीभर लोगों में भी वही विश्वास ईश्वर के प्रति होता, जो महात्मा गांधी को था, तो कैसा निर्भीक भारत होता?

('महात्मा का अध्यात्म' पुस्तक से) ❑

लघु-कथा

कैसा अच्छा पुरोहित था वह!

❑ **श्री कृष्णदत्त भट्ट**

विजय दशमी का दिन था।

मेवाड़ के राणा प्रताप और उनके छोटे भाई शक्त सिंह शिकार को निकले साथ-साथ।

दोनों ने एक हिरन का पीछा किया। दोनों ने साथ-साथ बाण चलाये। हिरन मर गया। पर सवाल था कि हिरन मरा तो किसके बाण से?

एक कहता–मेरे बाण से मरा। दूसरा कहता–मेरे बाण से।

राजपूतों का मामला। दोनों भाइयों ने तलवार खींच ली।

आओ, इसी से इस बात का फैसला करें। राजपुरोहित ने दूर से यह झगड़ा देखा, तो वे दौड़े।

उन्होंने दोनों को समझाया कि क्या नादानी करते हो। मेवाड़ की आशा तुम दोनों पर है और तुम्हीं दोनों एक दूसरे पर तलवार खीचे खड़े हो?

पुरोहित ने पूरी कोशिश की दोनों को समझाने की, मनाने की। पर गुस्से में, क्रोध में कौन सुनता है अकल की बात?

पुरोहित ने जब देखा कि ये लोग किसी तरह नहीं मानेंगे तो वह आकर खड़ा हो गया दोनों के बीचोबीच।

बोला–मैंने मेवाड़ का अन्न खाया है। मेवाड़ की मिट्टी से यह शरीर बना है। मैं अपने रहते मेवाड़ का दीपक नहीं बुझने दूँगा। तुम्हारा क्रोध खून ही चाहता है, तो यह लो।

पुरोहित ने अपनी कमर से कतार निकाल कर छाती में भोंक ली।

दोनों राजकुमार के मस्तक लज्जा से झुक गये। ❑

दलित-विमर्श

गांधी-अम्बेडकर : नवरत्नों की जोड़ी

❑ न्या. चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

भारत में दो महापुरुषों के अनुयायी आपस में वैर पाल लेने के आदी होते जा रहे हैं। अभी गांधी बनाम अम्बेडकर का विवाद नये संदर्भों में उछाला जा रहा है। जबकि भारत की एकता, अखंडता, सम्प्रभुता, धर्मनिरपेक्षता और साझा संस्कृति को बनाये रखने के लिए गांधी संग अम्बेडकर का विचार साथ-साथ प्रसारित होना ही चाहिए। **–कार्य. सं.**

नागपुर के विमानपत्तन (हवाई अड्डे) का नामकर 'डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन' किया गया। इसके लिए भारत सरकार का उड्डयन मंत्री भारत सरकार का अभिनंदन! गौरतलब है कि भंडारा जिले में ही संसदीय चुनाव में भारतरत्न बाबासाहेब को पराजित होना पड़ा था। आज उसी जिले ने एक दृष्टि से प्रायश्चित कर लिया। कुछ लोग राजनैतिक दलों या पार्टियों का विचार न करते हुए सर्वसम्मति से संसद में रहें, ऐसा होना चाहिए। इसके बिना संसद का स्वरूप अखिल भारतीय नहीं रह सकता। ऐसे व्यक्तियों में डॉ. बाबासाहेब का नाम प्रथम पंक्ति में था। परंतु राजनीति में राष्ट्र का विचार सबसे अंत में किया जाता है। अब बाबासाहेब की धर्मभूमि नागपुर ही नहीं, अपितु भंडारा और महात्मा गांधी की कर्मभूमि वर्धा-सेवाग्राम तथा आचार्य विनोबा की ब्रह्मभूमि पवनार जाना हो तो हवाई प्रवास करने वालों को डॉ. अम्बेडकर अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन पर उतरना होगा।

हमें एक बुरी आदत लगी हुई है महापुरुषों में आपस में झगड़ा लगाते रहना। तिलक-आगरकर, तिलक-गांधी, गांधी-अम्बेडकर में और उनकी विचारधारा में आक्षेप लगाने वाले झगड़े होते हैं। ऐसी टोका-टाकी के बिना उनके अनुयायियों का मनोरंजन नहीं होता। बर्नार्ड शा ने कहा है कि बड़े लोगों के उनके बड़ेपन की क्या सजा दी जायें, यह बात जब ईश्वर या भाग्य को नहीं सूझी तब उसने महापुरुषों को शिष्य-परम्परा दे डाली।' यों देखा जाए तो सारे महापुरुष त्रिकोण की ऊपरी छोटी-सी नोक (बिन्दु) पर एकत्र रहते हैं और शिष्य त्रिकोण के निचले दो भिन्न बिन्दुओं पर अलग-अलग रहते हैं। वे गुरु की ऊंचाई (महानता) तक पहुंच नहीं सकते, इसलिए जहां तक संभव हो, गुरु को ही अपने स्तर पर नीचे खींचते रहते हैं। गांधीजी ने 'अंत्योदय से सर्वोदय' में यह विचार प्रकट किया था। इसे भी हम आज भूलते जा रहे हैं।

डॉ. अम्बेडकर के प्रति गांधीजी के मन में आदर था। दोनों में मतभेद था, पर मनभेद नहीं था। दोनों के मार्ग भिन्न थे, पर ध्येय एक ही था। गांधीजी ने कहा है : *'डॉ. अम्बेडकर कटु हैं, इस व्यवहार के भरपूर कारण हैं। उन्हें उदार शिक्षण मिला है। सर्वसाधारण सुशिक्षित मनुष्य की अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता उनमें है। भारत के बाहर उनका स्वागत प्रेम और सम्मान के साथ होता है। परंतु भारत में, हिन्दुओं में कदम-कदम पर वे बहिष्कृत जाति के हैं, इसका स्मरण उन्हें करा दिया जाता है। उन्हें इसकी लज्जा लगने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था। डॉ. अम्बेडकर की जगह यदि मैं होता तो मुझे भी उनके जितना ही क्रोध आता। उनकी परिस्थिति में रहने पर कदाचित मैं अहिंसावादी नहीं बन पाता। अम्बेडकर जो भी करेंगे, उस सबको हमें नम्रतापूर्वक सहन करना चाहिए। इतना ही नहीं, इसमें हरिजनों की सेवा है।'*

महाड़ सत्याग्रह के विषय में गांधीजी ने कहा, ''प्रत्यक्ष अस्पृश्यता के लिए भी किसी विवेक का आधार नहीं है। वह एक अमानवीय संस्था है। वह गिरने की स्थिति में है। नामधारी सनातनी लोग केवल पाशवी बल पर उसे टिकाए रखना चाहते हैं। प्राप्त परिस्थिति में सारे दोष पृश्यों के ही हैं। अस्पृश्यों की रक्षा करने वाले कुछ स्पृश्य सामने आये हैं। यह बदलते समय का प्रमाण है। केवल मौन सहानुभूति ऐसे अवसर पर बहुत उपयोगी नहीं होती।''

लेकिन इधर कुछ लोगों ने ऐसा चित्र प्रस्तुत किया है कि गांधी-अम्बेडकर एक दूसरे के विरोधी थे। भारत का संविधान तैयार करते समय विदेशी विशेषज्ञों को बुलाने की तैयारी थी तब उसका विरोध करके गांधीजी ने यह काम डॉ. अम्बेडकर को सौंपने का निर्देश दिया। वे जब कानून मंत्री बने उन्होंने 'हिन्दूकोड' तैयार करके पूरे समाज पर एक तरह से उपकार किया।

डॉ. अम्बेडकर के मन में भी गांधीजी के प्रति अपार प्रेम और आदर था। सन् 1934 में जब गांधीजी की मोटर पर बम से हमला हुआ था, तब उन्होंने अपने भाषण में कहा, ''गांधीजी दीर्घायु हों।'' गांधीजी की हत्या के बाद भी उन्होंने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की और कहा नमक पर कर निश्चित करके उसकी आय का स्वतंत्र फंड (कोष) बनाया जाये और उसका नाम 'गांधी फंड' रखा जाये और उस फंड द्वारा जरूरतमंद दलितों को आर्थिक सहायता तत्काल प्रदान करने की व्यवस्था रहे। लुई फिशर की पुस्तक 'महात्मा गांधी : हिज लाइफ एंड टाइम्स' में 'पुणे-करार' के बाद आयोजित सम्मेलन में अम्बेडकर के भाषण का उल्लेख है—''मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि जब मैं उनसे (गांधीजी से) मिला तब मेरे ध्यान में आया कि उनके और मेरे विचारों में अनेक बातों में समानता और साधर्म्य है। जब-जब कुछ विवाद गांधीजी तक पहुंचे तब मैं आश्चर्यचकित रह गया कि जिस मनुष्य विचार गोलमेज सम्मेलन के समय मुझसे भिन्न था, वह व्यक्ति तत्काल मेरी मदद में और छुटकारे के लिए दौड़ा आया। मैं गांधीजी का ऋणी हूं कि अत्यन्त विकट परिस्थिति में से मुझे छुड़ाया।'' सवर्णों के मन से अस्पृश्यता

हटाने या दूर करने का काम हरिजन सेवा द्वारा गांधीजी ने किया, तो उधर अस्पृश्यों के उद्धार के आंदोलन द्वारा अम्बेडकर ने पूरे समाज का उद्धार किया। ये दोनों आंदोलन परस्पर पूरक थे। इसीलिए भारतीय संविधान में धारा 17 के अंतर्गत अस्पृश्यता नष्ट करने का संकल्प सम्भव हो सका। अम्बेडकर के कथनानुसार इस देश में अनेक संत हुए, जिन्होंने दया, करुणा और सहानुभूति जगायी। लेकिन ये संत जिनका शोषण हो रहा था उनके लिए और साथ-साथ जो शोषण कर रहे थे, उनके विरुद्ध खड़े होने के लिए सहभागी नहीं हुए। लेकिन ऐसा सहभागी एकमेव संत महात्मा हुआ, जिसका नाम था 'गांधी'।

अब 'हरिजन' शब्द का विरोध हो रहा है। इसके स्थान पर 'दलित' शब्द अपनाने के लिए कहा जा रहा है। इसमें आपत्तिजनक कुछ नहीं है। पर 'हरिजन' शब्द का प्रयोग तो सर्वप्रथम नरसी मेहता ने किया था। नरसी मेहता तो नागर ब्राह्मण थे, और उनकी हरिजनों से निकटता थी।

दादा धर्माधिकारी भी संविधान सभा के सदस्य थे। उसी समय मैं भी अम्बेडकर से मिला था। बाद में एक बार नागपुर में भी मिलना हुआ था। उन क्षणों को मैं भूल नहीं सकता। दादा ने अम्बेडकर को 'नवरत्न' कहा है। दादा कहते हैं : 'भारतीय जनता जिसे लिए गौरव महसूस करे, ऐसे महान पुरुष वे बने। बाबासाहेब अम्बेडकर केवल दलितों की अस्मिता का प्रतीक नहीं रहे भारतीय अस्मिता के प्रतीक के तौर पर इतिहास में उनका नाम कायम होगा। हिन्दू समाज में दलित जन स्वाभिमानपूर्वक रह सकें, इसलिए उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा और अटूट पराक्रम का विनियोग किया। अंततः उन्होंने विवश होकर धर्मांतरण करने का संकल्प किया। क्योंकि उनके अनुसार धर्मांतरण कर समाज का त्याग किये बिना जाति छोड़ने का अन्य उपाय ही नहीं है। उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया, जिसका प्रमुख तत्त्व अहिंसा ही है। यही गांधीजी का जीवनमूल्य भी था। ❑

संस्मरण

चम्पारण सत्याग्रह शताब्दी

❑ जयंत दिवाण

'भितहरवा' पश्चिम चम्पारण का छोटा-सा गांव है। नरकटियागंज रेल का जंक्शन है। यहां से नेपाल की ओर रेल की पटरी बिछी है। 'भितहरवा' जाने के लिए इसी पटरी से रेल दौड़ती है। 'भितहरवा' भी अब रेलवे स्टेशन है।

महात्मा गांधी जब चम्पारण आये तब 'भितहरवा' में उन्होंने आश्रम खोला था। यह आश्रम आज भी स्मारक के रूप में खड़ा है। सन् 1917 में गांधीजी के आवाहन पर 23 साल की उम्र में पुंडलीकजी 'भितहरवा' के आश्रम में सेवा करने के लिए आये थे।

चम्पारण सत्याग्रह खत्म हुआ। देश आजाद हुआ। चम्पारण के कार्यकर्ताओं की इच्छा हुई कि भितहरवा में रेलवे स्टेशन होना चाहिए ताकि इस ऐतिहासिक स्मारक को यात्री भेंट दे सकें। पुंडलीकजी इस काम में जुट गये। उन्होंने भितहरवा में रेलवे स्टेशन बनवा ही लिया।

कार्यकर्ताओं का आग्रह था कि रेलवे स्टेशन का उद्घाटन पुंडलीकजी के हाथों ही होना चाहिए। रेलमंत्री ने कार्यकर्ताओं की इच्छा को मान लिया। उद्घाटन कार्यक्रम का तार पुंडलीकजी को भेजा गया। तार घर पहुंचा तब पुंडलीकजी घर पर नहीं थे। जब वे चार दिन बाद घर लौटे तब इसकी जानकारी उन्हें मिली। हवाई जहाज की यात्रा कर वे 'भितहरवा पहुंचे। लोगों ने कहा, 'हमें पता ही था, कुछ भी हो जाये आप जरूर आयेंगे।' पहला रेल टिकट पुंडलीकजी के हाथों यात्री को दिया गया।

गांधीजी चम्पारण में तीन आश्रम खोले थे। इन आश्रमों के लिए उन्हें कार्यकर्ताओं की जरूरत थी। गांधीजी ने बेलगांव के गंगाधरराव देशपांडे को पत्र लिखकर कार्यकर्ताओं की मांग की।

गंगाधरराव देशपांडे तिलक के अनुयायी थे। उन्हें कर्नाटक सिंह कहा जाता था। बेलगांव कांग्रेस की जिम्मेदारी भी गंगाधरराव देशपांडे ही ली थी। वे गांधी के साथ जुड़ गये। पुंडलीकजी युवा अवस्था में गंगाधराव से जुड़ गये थे। गंगाधरराव के कारण पुंडलीकजी को लोकमान्य तिलक का सान्निध्य मिला। गांधी के तो वे साथ ही हो गये। गंगाधरराव से जब गांधीजी ने कार्यकर्ताओं की मांग की तो उन्होंने पहले सदाशिव लक्ष्मण सोमण को चम्पारण भेजा। सोमण जब वहां से लौटे तो उन्होंने चम्पारण की स्थिति तथा गोरे कोठी वाले एमेन की ज्यादती के बारे में विस्तार से साथियों को बताया। गोरे कोठी वालों में एमेन सबसे क्रूर व धूर्त था। जब पुंडलीकजी पर चंपारण जाने की बारी आयी तब उन्होंने गांधीजी के सामने शर्त रखी। अगर वे उन्हें भितहरवा आश्रम में भेजेंगे तो ही वे चंपारण आयेंगे। एमेन से दो दो हाथ करने की खुमखूमी उनमें थी। गांधीजी ने उनकी शर्त मान ली और यह युवक भितहरवा पहुंच गया।

पुंडलीकजी तब तक भितहरवा डटे रहे जब तक अंग्रेज सरकार ने उन्हें जिले से निष्कासित नहीं किया। एमेन के प्रत्येक बेकानूनी बातों को पुंडलीकजी ने जवाब दिया। एमेन की मनमानी को वे नकारते गये। उनके इस कृति से लोगों का भय दूर होने लगा। गांधीजी का कहना ही था कि भयभीत लोगों में जाकर बैठना ही हमारा काम है और यही काम भितहरवा आश्रम में बैठकर पुंडलीकजी किये।

पुंडलीकजी का चंपारण के लोगों व कार्यकर्ताओं से अपनापन बन गया था। राजेन्द्र बाबू, ब्रजकिशोर बाबू, रामनवमी प्रसाद के पारिवारिक सदस्य बन गये। यह स्नेह उनकी मृत्यु तक टिका रहा।

पुंडलीकजी अविवाहित थे। गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम पर वे काम करते रहे। आजादी के आंदोलन में सक्रिय रहे। 'पुंडलीक' नाम से उन्होंने मराठी में आत्मचरित्र लिखा है। चम्पारण सत्याग्रह पर भी उन्होंने विस्तार से लिखा है। चम्पारण के उनके अन्य संस्मरण भी रोचक हैं। ❑

चिन्तन

वर्तमान परिस्थिति में गांधी-विचार की प्रासंगिकता

❑ प्राचार्य डॉ. सोमनाथ रोडे

सत्याग्रह, असहयोग, अहिंसा का प्रयोग कर, जिसने काल पर अपनी छवि उकेरा है, विश्व में वह एक ही महापुरुष है, जिसका नाम है 'मोहनदास करमचंद गांधी'।

''20वीं शताब्दी ने विश्व को दो सामर्थ्यवान बातें दी—एक, 'अणुबम' और दूसरा 'महात्मा गांधी'। अणुबम विध्वंस का, प्रलय का, सर्वनाश का प्रतीक है, तो गांधी निर्माण, क्षमता, विधायकता एवं शांति का।''

–अल्बर्ट आइन्स्टाईन

चीन के पोलाद समाज एकाधिकारशाही के विरोध में बिजिंग के तिआनमेन चौक में वहां के विद्यार्थियों के द्वारा दी गयी लड़ाई हो अथवा इजिप्त के तहरीर चौक में घटित शांतिपूर्ण परिवर्तन की क्रांति हो, विश्व के कॉमन मैन के उसमें विहित शक्ति का परिचय हो गया है, बल्कि यह सामान्य मनुष्य ही सामूहिक परिचय का महाविस्फोटक है। इसके कहीं न कहीं गांधी-विचारों का परोक्ष प्रवाह है, यह सर्वकालिक सत्य है।

अब लड़ाइयां बहुत हुईं, रक्तपात बहुत हुआ, विनाश का तांडव बहुत हो गया, यह युद्धपिपासु मनुष्यों के समझ में आ गया है। इसलिए 'विनाश नहीं, विकास चाहिए', इस सूत्र वाक्य पर संपूर्ण विश्व सहमत हो रहा है। इस सकारात्मक चिन्तन के गर्भ में केवल गांधी और गांधी-विचार ही प्रासंगिक है, यह बात स्वयं अमेरिका के अध्यक्ष बराक ओबामा ने स्वीकार की है।

म्यानमार जैसे देश में एक निःशस्त्र महिला के सामने लश्करशाही को झूकना पड़ा। इजिप्त में सत्ताधीश होस्नी मुबारक को अहिंसक सामान्य जनता ने सत्ताधीन किया। लिबिया जैसे छोटे देश में राजसत्ता को जनता ने असहयोग आंदोलन कर समाप्त किया। विश्व में उठी परिवर्तन की लहर का अर्थ है—गांधी विचार को प्राप्त हुई वैश्विक सहमति। गांधीजी को केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विश्वस्तर पर शांतिदूत के रूप में स्वीकार किया गया है।

गांधीजी का Have more के बजाय Just enough का सिद्धांत, Greed Based के बजाय Need Based जीवन में स्वीकार किया गया है।

महात्मा गांधी और पर्यावरण : प्रकृति के अनुरूप संतुलित जीवन जीने की आवश्यकता, अनासक्ति का अनुसरण करने का परामर्श, 'ग्लोबल वार्मिंग' की समस्या आदि विषयों पर 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में गांधी द्वारा प्रकाश डाला गया है।

1993 में 53 नोबेल पुरस्कार से सम्मानित व्यक्तियों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक आवेदन दिया, जिसमें कहा गया कि वर्तमान वैश्विक समस्याओं के समाधान गांधी विचार में है। अँगसन-सू-क्यू, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला, मथाई, दलाई लामा, डॉ. मोहम्मद युनूस, बराक ओबामा, मलाला युसुफझाई, कैलाश सत्यार्थी आदि सभी नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते समय कहते हैं कि हम गांधीजी की ओर से यह पुरस्कार स्वीकार करते हैं। इसमें महात्मा गांधी का श्रेष्ठत्व दिखायी देता है।

मेटलॅड ने लिओ टॉल्स्टॉय की 'दि किंग्डम ऑफ गॉड इज विदीन यू' पुस्तक गांधी को भेंट दी। इस पुस्तक का गांधी पर बहुत प्रभाव, परिणाम हुआ। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद गांधी टॉल्स्टॉय की ओर प्रतिगुरु के रूप में देखने लगे।

"Gandhi was one man army. He is a man whom guns cannnot frighten, whom money can not buy, whom woman cannot seduce." **–जनरल स्मट्स**

गांधी का आंदोलन यह सही अर्थों में सभी प्रकार की गुलामी से मुक्त होने के लिए निर्मित मुक्ति का आंदोलन था।

गांधी प्रणित विचारधारा

* Horse Power के बजाय Man Power.
* Mass Production के बजाय Production by Masses.
* गांधी ने कहा चले जाओ और आज हम कहते हैं चले आओ।
* हमारी यात्रा Self Reliance की ओर से Reliance की ओर जा रही है।
* क्षमतानुसार काम आवश्यकता के अनुसार दाम।
* अधिक से अधिक लोगों के उत्थान के बजाय सबके उत्थान में हमारा उत्थान।
* वर्तमान में गांधी और गांधी विचारधारा का सार्वत्रिक सहमति।
* 150 देशों के डाक टिकट पर, 100 चलन सिक्कों पर गांधी विराजमान। विश्व के 200 से 250 विश्वविद्यालयों में गांधी विचारधारा का अध्ययन-अध्यापन होता है।
* गांधीजी के ग्रामस्वराज्य Village Republic का स्वप्न गड़चिरोली जिले के मेंढा-लेखा गांव में देवाजी तोफा और मोहन हीराबाई हीरालाल ने साकार किया, उस गांव की घोषणा है—''दिल्ली, मुम्बई में हमारी सरकार, अपने गांव में हम ही सरकार।''

आज विश्व में जेफरसन, चर्चिल, हिटलर, स्टॅलिन पढ़ा-पढ़ाया नहीं जाता, गांधी सर्वत्र पढ़े-पढ़ाये जाते हैं। गांधी बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक कालसंगत नेता थे। इक्कीसवीं शताब्दी जैसे-जैसे आगे विकसित होगी वैसे ही विश्व की समझदारी गांधी के विचारों का आश्रय लेगी। रोमांरोला महात्मा

गांधी को दूसरा 'ईसामसीह' कहकर संबोधित करती थी। नैराश्य और भ्रम के युग में गांधी आशा के मसीहा हैं।

2 अक्टूबर 2007 में संयुक्त राष्ट्रसंघ की सभा में 191 राष्ट्रों ने प्रस्ताव सर्वानुमति से पारित किया कि 2007 से महात्मा गांधी का जन्मदिन संयुक्त राष्ट्र के प्रत्येक देश में 'वैश्विक शांति दिवस' अथवा 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनाया जायेगा। इससे समझ में आता है कि विश्व को गांधीजी के शांतिपूर्ण विचारों की कितनी आवश्यकता है। गांधी का शरीर मारा जा सकता है किन्तु विचारों को नहीं मारा जा सकता, यह कालातीत सिद्ध हुआ है।

स्वयं के आचरण में न आने वाली एक भी बात गांधी बोलते नहीं। इतना ही नहीं बल्कि उनका आचरण उनकी वाणी से चार कदम आगे ही रहती है। बापू अर्थात कर्तृत्वप्रधान श्रद्धा की मूर्ति, शाश्वत शक्ति का सनातन निरंतर प्रवाह।

सच देखे तो काल ने आज सिद्ध किया है कि 'मजबूर का नाम गांधी नहीं बल्कि मजबूती का नाम गांधी है।' रोझा पार्क्स का प्रसंग और गांधी का सविनय असहयोग आंदोलन समझकर लेने की बात है।

अंततः महर्षि बाबा आमटे के शब्दों में कहना होगा कि—''गांधी महात्म्य बताकर भी गांधी अवर्णनीय है और भविष्य की पीढ़ियों को उनकी पहचान कराने के लिए कम्प्यूटर की आवश्यकता होगी।

किन्तु काल के भाल पर प्रकट
वह तप्त युगमुद्रा।

किसी भी इतिहास से मिटाई नहीं जा सकती।''

गांधी की अहिंसा, मदर टेरेसा की करुणावृत्ति, करुणामय स्वभाव और मार्टिन लूथर किंग की अन्याय के विरोध में शांतिपूर्ण मार्ग से संघर्ष करने की वृत्ति, स्वभाव के पाठ शैक्षणिक संस्थाओं के पाठ्यक्रम में होने चाहिए। ❑

गांधी की शिक्षा और शोषण-विहीन समाज

❑ **विकास कुमार 'विक्की'**

''मैं भारत के लिए अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के सिद्धांत का दृढ़ समर्थक हूं। यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब हम हर बच्चों को एक उपयोगी व्यवसाय सिखायें और उसका उपयोग उसके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षमताओं को विकसित करने में करें। इसे दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि एक बच्चे के शारीरिक अंगों का बेहतर इस्तेमाल ही उसके मस्तिष्क के विकास की कुंजी है।''

–महात्मा गांधी

महात्मा गांधी का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही आदर्शवादी रहा है। उनका मानना था, किसी भी देश और समाज की उन्नति और अवनति, उस देश के प्रयोजनवादी विचारधारा पर आधारित शिक्षा पर निर्भर करता है। गांधीजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य महज साक्षर होना नहीं बल्कि शिक्षा का उद्देश्य, आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति का जरिया होना चाहिए। पर उनका यह मानना था कि सामाजिक उन्नति हेतु शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः गांधीजी का शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष योगदान रहा है, जिसका उद्देश्य सबकी भलाई थी। इसलिए उन्होंने सर्वोदय आंदोलन को चलाया, जिसका मूलमंत्र था—''शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति एवं समूहों को सर्वांगीण विकास के साधन और अवसर मिले।'' वहीं आज पूरी दुनिया में बहुत सारे वर्ग शोषण-विहीन समाज के दायरे में आ चुके हैं, जैसा कि दलित, मजदूर, किसान आदि। वास्तव में अभी तक इन सभी वर्गों की बात होती रही है किन्तु आगे की पंक्तियों में शोषण-विहीन समाज के अंतर्गत विकलांगों की स्थिति को लेकर ही चर्चा एवं विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

गांधीजी के बारे में कई तरह की बातें की जाती हैं, जबकि सच यह है कि वह एक व्यक्ति नहीं विचार थे, भविष्य-द्रष्टा थे, आधुनिक युग के महान् तपस्वी थे। वे सदियों से देश के शोषित, पीड़ित, वंचित और उत्पीड़ित जनता के तारनहार थे। गांधी की अवधारणाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्ताक्षर किये हैं। उनके मूल सिद्धांत में ही यह बात शुमार थी कि प्रत्येक समाज शोषण से मुक्त हो। स्वाभावतः इसके लिए शिक्षा ही वह चीज है, जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। शिक्षा समाज की रीढ़ होती है। शिक्षा को समाज परिवर्तन का प्रभावी माध्यम माना जाता है। शिक्षा से ही व्यक्ति का चतुर्दिक विकास होता है। शिक्षा मनुष्यों के बीच पारस्परिक संबंध स्थापित करती है और एक-दूसरे को समझने का मौका देती है तथा नये सृजन हेतु पुराने में परिवर्तन करती है। तभी आदर्श समाज का निर्माण होगा, ऐसा वह कहते थे। यही कारण है कि वे एक महान समाज सुधारक के रूप में भी जाने जाते हैं। बल्कि विदेशियों ने भी उनकी तुलना प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात तथा प्रसिद्ध अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के समान महान पुरुषों से की है, क्योंकि गांधीजी ने न केवल भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में भूमिका निभायी वरन् समाज में असमानता के भेद को कम करने के लिए अपने विचार स्पष्ट किये, जिसके कारण आचार्य नरेन्द्र देव ने गांधीजी को आधुनिक युग का एक अद्वितीय युग पुरुष कहा है।

भारत विश्व में सबसे बड़ा प्रजातंत्र माना जाता है और इसमें कोई संदेह भी नहीं क्योंकि सफलताएं तो इन 70 वर्षों में हमने विज्ञान, टेक्नोलॉजी, आर्थिक और सामाजिक आदि अनेक क्षेत्रों में भी पायी। उन सबका विस्तार से वर्णन करना यहां न संभव है, न आवश्यक ही। *आवश्यकता इस बात की पड़ताल करने की है कि क्या हम इन सफलताओं के बाद भी एक सुगठित राष्ट्र के रूप में विश्व में एक 'शक्ति' बन सके? क्या हमने अपने देशवासियों को जीने का अधिकार दिया है? क्या आज का भारत उन आशाओं और आकांक्षाओं का वह चित्र उपस्थित करता है, जो गांधी के मन में था? हम कहने को विवश हैं कि आज जो स्थिति है, दुर्भाग्य से वह उनकी भावनाओं और कामनाओं के अनुरूप नहीं है। आज का जो परिदृश्य है, उसे देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि इस देश में कभी गांधी जैसे महान व्यक्ति, महान तपस्वी और महान विचारक भी हुए।*

गांधीजी शिक्षा के समग्र रूप पर अधिक जोर देते थे। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति ओर समाज दोनों का सम्यक विकास कर सके और इस क्रम में भी मौलिक रूप से व्यक्ति का, क्योंकि व्यक्ति के सम्यक विकास से ही समाज का सम्यक विकास संभव है। ऐसी स्थिति में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं भावनात्मक विकास कर सके और साथ ही साथ उसे आत्मनिर्भर कर सके। शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी की यह देन इस मायने में बहुत महत्त्वपूर्ण है कि यह न केवल व्यक्ति को बल्कि समाज को बदलने के लिए भी सशक्त माध्यम उपलब्ध करती है। शिक्षा इसलिए भी जरूरी होती है कि वह अपने परिवेश से हमें जोड़ती है और एक पहचान देती है। वह मानते थे कि शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि वह मौजूदा पीढ़ी को पिछली पीढ़ी का भार उठा लेने और सामाजिक जीवन को विनाश या टूट-फूट से बचाकर कायम रखने के लायक बनाये। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य संपूर्ण मानव का निर्माण करना है, जिससे उसका समग्र व्यक्तित्व विकसित हो सके।

व्यक्ति का सच्चा हित समाज के हित में ही निहित है। इसलिए व्यक्ति के निर्माण के साथ-साथ हमें समाज के निर्माण पर भी ध्यान देना होगा, जो शिक्षा का सबसे बड़ा दायित्व है। वे कहते थे कि हमें अपने शालाओं को वैसे समाज में बदल देना चाहिए जहां व्यक्तित्व कुंठित न होकर हमेशा विकसित होता रहे। उनके अनुसार शिक्षा का महत्त्व तभी प्रकट होगा, जब वह अपने वातावरण को प्रभावित करेगी। महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा समाज-परिवर्तन का उपकरण होनी चाहिए। और शिक्षा के द्वारा विभिन्न वर्गों के लोगों में सांप्रदायिक सद्भाव उत्पन्न किया जा सकता है। विकलांगजन जो सबसे मुश्किल चुनौती झेलता है, वह है शिक्षा हासिल करना। शिक्षा के नतीजे खराब हों तो शारीरिक और मानसिक कमजोरियां कई गुना बढ़ जाती है। विकलांग बच्चों के स्कूल में न होने के मामले दूसरे बच्चों की तुलना में बहुत ज्यादा है। देश में विकलांगों के शिक्षा हासिल करने की दर आज भी बहुत कम है।

गांधीजी ने समानता के आदर्श को स्पष्ट करते हुए कहा है कि सामाजिक दृष्टि से सब समान उत्पन्न हुए हैं अर्थात सबको समानता का अधिकार प्राप्त है, किन्तु सबमें क्षमताएं समान नहीं होतीं। सभी एक ऊंचाई, रंग, बुद्धि आदि के नहीं होते। करांची कांग्रेस अधिवेशन से पहले ही गांधीजी ने अपने अखबार 'यंग इंडिया' में एक मई 1930 को लिखा था— *''मेरे सपनों के स्वराज में धर्म या मूल के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। इसमें न तो विद्वानों का एकाधिकार होगा और न ही धनवानों का। स्वराज सभी के लिए एक जैसा होगा।* इसमें न तो विद्वानों का एकाधिकार होगा और न ही धनवानों का। स्वराज सभी के लिए एक जैसा होगा और इसमें गरीब, मेहनतकश, विकलांग व्यक्ति भी एक-सा जीवन बिता सकेंगे।'' शिक्षा जीवन का ही अंग है, इसलिए शिक्षा को जीवन से अलग हटकर नहीं होना चाहिए। जो शिक्षा जीवन की समस्याओं से मुकाबला करने के लिए तैयार नहीं करती, वह शिक्षा व्यर्थ है। इसलिए आज की पीड़ित और शोषित (विकलांगजन) मानवता गांधीजी की ओर देखती है।

विकलांगों की समस्या के हल के लिए समग्र प्रयासों का सिलसिला दो शताब्दियों पूर्व प्रारंभ हुआ था। किन्तु इनके जीवन-स्तर पर खासा प्रभाव नहीं पड़ा है, परंतु अज्ञान, अंधविश्वास, उपेक्षा, भय आदि के कारण विकलांग व्यक्ति अभी भी समाज से काफी अलग-थलग हैं तथा उनका विकास अभी भी अधूरा है। समाज की यह कोशिश होनी चाहिए कि विकलांग व्यक्ति इस लायक बनें कि वे सामान्य व्यक्तियों के बराबर ही अपने दायित्वों का निर्वाह भी कर सकें। उसके लिए सभी को शिक्षित होना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के अभाव में एक स्वस्थ समाज का निर्माण असंभव है। शिक्षा समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से हो न कि कुछ व्यक्तियों के लिए। इसलिए गांधीजी शिक्षा के समग्र रूप पर अधिक जोड़ देते थे, गांधीजी शिक्षा को मानव के सर्वांगीण विकास का साधन मानते थे। गांधीजी शिक्षा को गांवों के उस वंचित वर्ग तक लाना चाहते थे जो समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ा हो। शिक्षा पर गांधीजी के विचार ऐसे हैं, जो प्रासंगिकता की कसौटी पर आज भी खरे उतरते हैं।

गांधीजी की शिक्षा संबंधी विचारधारा की प्रासंगिकता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी प्रासंगिक है। किन्तु आज ऐसा लग रहा है कि बीतते वक्त के साथ यह अहसास और गहरा होता गया है कि हमने गांधी-विचार की शिक्षा नीति को समझने में आज कहीं न कहीं बड़ी भूल की है। जिसके कारण आज हम अपनी

ही बनायी समस्याओं में उलझते जा रहे हैं। जिससे विकलांगों को शिक्षण-तंत्र का बराबर लाभ पाने का अधिकार से वंचित होना पड़ रहा है।

निष्कर्षतः भारतीय शिक्षा प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए गांधीजी का शिक्षा दर्शन अपनाने की आवश्यक आज आन पड़ी है। आजादी के भारतीय संविधान द्वारा भारतीय शासन व्यवस्था में गांधीजी के विचारों के तरजीह दिया गया है। गांधीजी के दर्शन को समय और परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए स्थान दिया गया है। अब प्रश्न यह उठता है कि गांधीजी के शिक्षा दर्शन को भारतीय शासन की शिक्षा में जो स्थान मिला है, वह कितना कारगर है। इस पर विचार-विमर्श की आवश्यकता अत्यधिक है। गांधीजी की अवधारणाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्ताक्षर किये हैं। उनके मूल्य सिद्धांतों में ही यह बात शुमार थी कि प्रत्येक समाज शोषण से मुक्त हो। स्वभावतः इसके लिए शिक्षा ही वह चीज है जो कि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसके पश्चात् ही हम उनके सपनों का एक वर्ग-विहीन शोषण-मुक्त, समानता व न्याय पर आधारित समाज बनाने में सफल हो सकेंगे। ❑

'सर्वोदय जगत'
के सभी सुहृद पाठकों, शुभचिन्तकों, लेखकों की सुविधा की दृष्टि से पत्रिका का हर अंक सर्व सेवा संघ प्रकाशन की वेबसाइट
www.sssprakashan.com
पर उपलब्ध है। –का. सं.

हमारा प्रिय कश्मीर

❑ डॉ. एस. एन. सुब्बराव

कश्मीर में हुई मौतों की वेदना हम सबको है। मारे गये हर मनुष्य की माँ होगी, कोई जीवन-साथी होगा, भाई-बहन होंगे, सोचिए, उनकी वेदना, उनका दुःख कितना अधिक गहरा होगा। सामान्यतः लोग इसी पूछताछ में रुचि रखते हैं कि दोष किसका है। किन्तु परिपक्व मनुष्यों के नाते हमें स्वयं से पूछना होगा कि क्या सबक हम सीख सकते हैं; माहौल को दुरुस्त करने में हमारी क्या भूमिका हो सकती है।

जब भारत विभाजित हुआ था, पाकिस्तान ने अपने वाले हिस्से का नाम 'इस्लामिक रिपब्लिक ऑव पाकिस्तान' तय किया। लेकिन भारत 'रिपब्लिक ऑव इंडिया', भारतीय गणतंत्र ही रहा। भारतीय राजनेता विवेकी थे। यदि हम 'हिन्दू रिपब्लिक ऑव इंडिया' होते, तो कश्मीर, पंजाब, नागालैड, मेघालय, मिजोरम, लक्षद्वीप के जनगण स्वयं को गौरव भारतीय कैसे कहते? इन राज्यों में अहिन्दू बहुसंख्या में हैं, सब हमारे अपने जन हैं, भारतीय है।

कश्मीर में महात्मा गांधी : महात्मा गांधी अपने जीवनकाल में कश्मीर केवल एक बार होकर आये थे, 1947 में एक से चार अगस्त के दौरान। कश्मीर के राजा हरिसिंह और रानी तारा देवी ने उनका भावभीनी स्वागत किया था। सबसे बुलन्द कश्मीरी नेता शेख अब्दुल्ला की शरीके-हयात बेगम अकबर जहान ने भी अनेकों महिलाओं के साथ गांधीजी के स्वागत में भाग लिया था।

महात्मा गांधी शेख अब्दुल्ला और उनके नेतृत्व के प्रशंसक थे क्योंकि शेख साहब आजादी के हिम्मतवर सिपाही थे और आजादी, सच्चाई, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और हिन्दू-मुस्लिम एकता के शानदार उसूलों पर हमेशा कायम रहे। वे भी भारत और पाकिस्तान के विभाजन के खिलाफ थे।

इस कश्मीर दौरे के मध्य गांधीजी ने एक उल्लेखनीय वक्तव्य यह दिया था कि उन दिनों भारत के कई हिस्सों में साम्प्रदायिक कटुता और उथल-पुथल जारी थी, लेकिन कश्मीर में हिन्दू और मुस्लिम पूर्ण समन्वय और शांति के साथ रह रहे थे। गांधी के बाद विनोबा और जेपी ने भी कश्मीर समस्या को सुलझाने की बड़ी कोशिश की।

अब गांधीजी भौतिक रूप से हमारे साथ नहीं हैं, किन्तु उनकी आत्मा कश्मीरी भाइयों और बहनों से भारत के सभी हिस्सों में हिन्दू-मुस्लिम एकता का आलोक प्रसारित करने के लिए कह रही है।

पाकिस्तानी राजनेता दावा करते हैं कि कश्मीर में मुस्लिम बहुसंख्यक हैं और इस वजह से कश्मीर पाकिस्तान को मिल जाना चाहिए। इन राजनेताओं को यह अहसास होना चाहिए कि भारत में मुस्लिमों की संख्या पाकिस्तान की बनिस्बत कहीं ज्यादा है। संसार के किसी भी देश से भारत में मुस्लिमों की जनसंख्या अधिक है। भारत के वासी हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी, बहाई सभी पाकिस्तान को बता सकते हैं कि भारत में रहने वाले मुस्लिम उतने ही भारतीय हैं, जितने कि हिन्दू अथवा अन्य। हर कश्मीरी महिला और पुरुष को भारत की एकता में अपने योगदान का गौरव होना चाहिए, और भारतीयों को कश्मीरियों पर नाज होना चाहिए।

दस्तावेज : 1942

दीवाली फिर आ गयी सजनी!

❑ रामवृक्ष बेनीपुरी

जेपी का जेल से फरार होने की कहानी

1942। दीवाली। संध्या 7 बजे।

बिहार का हजारीबाग सेंट्रल जेल।

जेल के भीतर—

लगभग दो दर्जन राजबन्दी दीवाली मना रहे हैं।

बीच में एक खूबसूरत किशोर हाथ में थाल लिये। थाल में बयालीस दीपक जगमग कर रहे हैं। वह बड़ी शान से थाल को नचाता हुआ गाता है—

''दीवाली फिर आ गयी, सजनी!''

बीस-पच्चीस नौजवान उसे घेरे हुए। कोई थाली पीट रहा, कोई बाल्टी बजा रहा, कोई लोटा टनटना रहा और बीच के उस किशोर के स्वर का अनुगमन करते हुए सभी गा रहे—

''दीवाली फिर आ गयी, सजनी!''

कई सौ राजबन्दी हैं यहां। प्रदेश के चीफ मिनिस्टर हैं, मिनिस्टर हैं, स्पीकर हैं, चेयरमैन हैं; विधायक हैं, नेता हैं, कार्यकर्ता हैं, कांग्रेसी हैं, सोशलिस्ट हैं, फारवर्ड ब्लाकिस्ट हैं, कम्युनिस्ट हैं। सभी इस अनुपम दीवाली उत्सव को देख रहे हैं, हंस रहे हैं, तालियां पीट रहे हैं। बहुत-से लोग धीरे-धीरे इस उत्सव में शामिल होते जा रहे हैं।

रंग जमता जा रहा है, झुंड बढ़ता जा रहा है।

जेलर देख रहे हैं, नायब जेल देख रहे हैं। जमादार साहब तो इतने भावावेश में आ जाते हैं कि तालियों का गुच्छा झनझनाते हुए वह भी गाने लगते हैं—''दीवाली फिर आ गयी, सजनी!''

और उधर, जेल के उस निभृत कोने की दीवार के नीचे, जहां जामुन के लंबे पेड़ की छाया दीवार पर गिरती है, दो आदमी एक मेज लाकर रख देते हैं।

उनमें से एक मेज पर चढ़कर दीवार को पकड़ता है, दूसरा उछलकर उसके कंधे पर चढ़ जाता है।

तब तक चार आदमी और वहां जाते हैं। उनमें से एक पहले आदमी की कमर पर लात रखता हुआ दूसरे की कमर को पकड़कर कंधे पर चढ़ जाता है।

वह कंधे पर खड़ा होता है। अब दीवार का ऊपरी छोर उसकी पहुंच में है। इधर-उधर देखता है, फिर कंधे से दीवार पर जाकर अपने को दीवार के उस पार खिसका देता है।

सर-सर-सर-सर! छाती में कुछ रगड़, ठुड्डी में कुछ खरोंच। अब वह दीवार के उस पार जमीन पर खड़ा है।

इधर-उधर चौकन्ना देखता है, कोई नहीं। वह लेट जाता है।

उसकी कमर में कपड़े को लिपटाकर बंधा हुआ एक रस्सा है। इस कपड़े के रस्से का एक छोर दीवार के उस पार जेल के अंदर है।

यह रस्सा अब कमंद का काम कर रहा है।

इस कमंद के सहारे दूसरा आदमी भी दीवार के उस पार गया।

तीसरा गया।

चौथा गया।

पांचवां गया।

छठा गया।

छह कैदी जेल की दीवार पार कर बाहर निकल चुके हैं, सिर्फ छह मिनट में।

हां, सिर्फ छह मिनट में।

आज दो महीने से एक सैल में इसी प्रकार मेज लगाकर, उस पर आदमी पर आदमी खड़ा कर, फिर कमंद के सहारे चढ़-उतरकर, वे लोग अभ्यास कर रहे थे।

पांच से सात मिनट के अंदर काम पूरा कर लिया जा सकता है।

इन्होंने छह मिनट में समाप्त कर दिया।

जिस जिले को अंग्रेजी सरकार ने अभेद्य, अनुल्लंघनीय समझा था, उसे छह राजबंदियों ने छह मिनट में पार कर दिया।

उधर जेल के भीतर जहां गैस की रोशनी में जर्रा-जर्रा चमचम कर रहा है—जोरों का शोर हो रहा है—

''दीवाली फिर आ गयी, सजनी!''

इधर जेल के बाहर, जहां इस अमावस्या का सूचीभेद्य अंधकार है, छह राजबन्दी भागे जा रहे हैं—काले चुप्प अंधकार में, भूत की तरह।

(2)

दूसरे दिन ढाई बजे दिन में पटना सेक्रेटेरियट में आल क्लियर टेलीफोन घनघना उठता है—

''हलो, हलो!''

''जी, मैं हूं सुपरिंटेंडेंट, हजारीबाग जेल।''

''क्या बात है?''

''अंधेर हो गया, छह राजबन्दी जेल से भाग गये!''

''कब भाग गये?''

''जी, अभी-अभी पता चला है।''

''दिन में भाग गये?''

''जी, पता नहीं चल रहा है, कब भागे! हम पता लगा रहे हैं। शायद भोर में भागे हों?''

''कैसे भागे?''

''उसका भी पता हम लगा रहे हैं।''

''वे लोग कौन थे?''

''उनमें एक थे जयप्रकाश नारायण।''

''जयप्रकाश नारायण! हलो, आप कह रहे हैं जयप्रकाश नारायण! सोशलिस्ट नेता।''

''जी, वही।''

और उसके बाद बिहार के सारे सूबे में खलबली थी। हर जेल में सूचना दी गयी, होशियार रहो, कोई व्यापक षड्यंत्र है, हर जिले में खबर हो गयी, होशियार रहो, न जाने क्या हो!

रांची में फौजी पड़ाव है। जापानी आक्रमण से बचने के लिए हिन्दुस्तान की सेकेण्ड लाइन ऑव डिफेंस। हजारीबाग से सिर्फ चालीस मील पर है वह पड़ाव। वहां

खबर की जाती है, इन कैदियों को पकड़ने में फौज की मदद लो!

ऊपर हवाई जहाज मंडरा रहे हैं—जंगल, पहाड़, मैदान—सब जगह गृद्धदृष्टि से देखा जा रहा है—भगोड़े कैदी कहां हैं!

हजारीबाग से बाहरी दुनिया में जाने वाली सभी सड़कों और राहों पर पहले पड़ रहे हैं।

बिहार-गजट का विशेष संस्करण निकलता है—

हजारीबाग सेंट्रल जेल से छह कैदी भाग गये हैं। जो उन्हें पकड़ा देगा, उसे इक्कीस हजार रुपये इनाम में मिलेंगे। हर कैदी पर इनाम रकम यों है—

जयप्रकाश नारायण	5000/-
योगेन्द्र शुक्ल	5000/-
रामनन्दन मिश्र	5000/-
सूरजनारायण सिंह	2000/-
गुलाली सोनार	2000/-
शालिग्राम सिंह	2000/-

फौज, पुलिस, जेल—तीनों विभागों के लोग इन कैदियों को पकड़ने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं। कुछ ऐसे सज्जन भी, जो कुछ रुपयों पर देश को बेच सकते हैं, इनका साथ दे रहे हैं।

सड़कों पर, राहों पर, पगडंडियों पर चलने वाले एक-एक आदमी को गौर से देखा जाता है।

किन्तु, उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ रहे हैं, व्यर्थ जा रहे हैं!

(3)

जब जेल की दीवार पार करके वे छह बन्दी चले तो जल्दी में जान न सके कि किधर जा रहे हैं!

यह पहाड़ी जिला—चारों ओर जंगल-जंगल—कहीं-कहीं बस्तियां।

तय था, जेल से निकलकर वे एक निश्चित पथ से बढ़ेंगे और यहां से सात मील दूर के एक गांव में जाकर दम लेंगे। वहां से सवारी का प्रबंध करके वे बाहर जायेंगे—कहां!

निश्चय किया गया था कलकत्ता पहुंचने का।

किन्तु यहां तो रास्ता ही भूल गया।

जंगल-जंगल वे बढ़ रहे हैं और जब पीछे मुड़कर देखते हैं, एक पहाड़ी पर बने उस जेल के सेंट्रल टावर की रोशनी देखते हैं।

यह रोशनी उन्हें कितना भयभीत करती है!

कि अचानक गुर्राहट।

अरे, क्या यह शेर है?

हां, शेर ही तो।

बिहार के शेर श्री योगेन्द्र शुक्ल आगे बढ़ते हैं, उसी भयानकता से ललकारते हैं। लगता है, शेर ने शेर की कद्र की। उसने रास्ता छोड़ दिया। वे आगे बढ़े।

उस दिन जब दुनिया दीवाली मना रही थी और जेल में बारह बजे तक 'दीवाली फिर आ गयी, सजनी' की धूम मची थी, ये छह राजबन्दी घनघोर जंगल में, काले घुप्प अंधेरे में, आगे बढ़ रहे थे।

इनके पैर नंगे थे, कपड़े भीग गये थे।

जूतों और कपड़ों की गठरी जेल में ही रह गयी थी। कमंद के सहारे उसे फेंकने की कोशिश की गयी, किन्तु बेकार। फिर ज्योंही बाहर निकले, सब के सब एक नाले में गिर पड़े। पैरों में कांटे चुभ रहे थे, सर्दी के मारे दांत किट-किट कर रहे थे। तो भी वे बढ़ते जा रहे थे।

रात भर चलते रहे।

कहां जा रहे हैं, कुछ पता नहीं। ध्रुव-नक्षत्र को देखकर अपने जानते उत्तर दिशा की ओर बढ़ रहे हैं।

अंततः जब आकश में लाली फैली, उषाकालीन मंद हवा चलने लगी तो इनकी आंखों पर नींद मंडरा उठी। एक पेड़ के नीचे सो गये।

जब चारों ओर सूरज की रोशनी जगमग कर रही थी, तब उनकी नींद टूटी। अरे, पैरों की क्या हालत है। वे रक्त से सने हैं। चेहरे और बदन भी देखने लायक। कितने खरांच, कितने जख्म!

तो भी चलना है! चलना है! चलना ही है!

पैर घसीट रहे हैं, लेकिन अब पेट में भूख की कुलबुलाहट है। यहां खाने को क्या मिले! सामने एक झरबेरी का पेड़ है, उसके छोटे-छोटे खट्टे-मीठे फल तोड़कर खा रहे हैं। आगे एक करोंदे का पेड़ मिला, उसके फल भी चखे गये। फिर एक आंवले का पेड़! लेकिन इनसे क्या भूख मिट सकती है! शाम तक पेट में जैसे आग दहकने लगती है।

पास में सिर्फ सौ रुपये का एक नोट है और फुटकर सिर्फ चार आने।

सौ रुपये का नोट कहां भंजे! उनमें से एक आदमी जंगल से निकल सड़क के किनारे के एक भड़भूजे की दुकान पर आता है और चार आने का चिउड़ा खरीदकर ले आता है।

चौबीस घंटे के बाद चार आने के छह छटांक अन्न पर छह आदमी टूटते हैं। "थोड़ा बचा करके भी रखो भाई, न जाने फिर कब अन्न के दर्शन हों!" दो-दो मुट्ठी मुंह में रखते हैं, एक झरने से खूब पानी पी लेते हैं और पेड़ के निकट सो जाते हैं।

फिर भोर—फिर यात्रा!

किन्तु यह क्या! जयप्रकाश का साइटिका उभर आया है। सारे पैर में तनाव है, दर्द है। वह चल नहीं पाते। पैर तो घायल हैं ही। दो साथी उन्हें सहारा देकर आगे बढ़ा रहे हैं। कभी-कभी उन्हें लकड़ी पर टाँग करके भी आगे बढ़ते हैं।

दिन भर चलते रहे। संध्या के समय एक गांव निकट आया, एक परिचित गांव। इसी गांव में तो दुबेजी, एक देशभक्त, हाल ही में जेल से छूटकर आये हैं।

दुबेजी ने भोजन का प्रबन्ध किया, बैलगाड़ी का प्रबन्ध किया। रात में तीन आदमी बैलगाड़ी के ऊपर लेटे हुए हैं, तीन आदमी आगे-पीछे चल रहे हैं। बैलगाड़ी में लकड़ियां लाद दी गयी हैं। तीनों के हाथ में कुल्हाड़ी और डंडे हैं। लोगों को लगता है, किसान लोग जंगल से लकड़ी काटकर घर लौट रहे हैं।

हजारीबाग जिला पार किया गया। गौतम बुद्ध की पावन भूमि गया जिले में पहुंच गये। वहां से शेरशाह के शाहाबाद जिले में आये।

एक सप्ताह तक इसी तरह पैदल और बैलगाड़ी पर चलते रहे। फिर एक छोटे से स्टेशन पर रेलगाड़ी पकड़कर काशी पहुंचे।

पहुंचना था कलकत्ता—पहुंच गये काशी!

गुपचुप एक प्रोफेसर मित्र के घर गये। मित्र थे नहीं; उनके नौकर ने कहा—"बाबू, आपको क्या हो गया है? क्या बीमार थे?"

और, बाबू भागे जा रहे हैं—कहीं इस नौकर ने इनाम के लोभ में गिरफ्तार करा दिया तो!

(4)

1942 की नवीं अगस्त भारतीय इतिहास में अमिट हो चुकी है तो उसकी 1942 की दीवाली भी कभी नहीं भूली जा सकेगी।

भारत के राजनैतिक इतिहास के लिए यह एक अनोखी घटना थी।

वारंट कटा, कहीं गायब हो गये। जेल में भेजे जा रहे थे, बीच में चम्पत हो गये। जमानत पर बाहर आये, नौ-दो ग्यारह हो गये—ऐसी घटना तो प्रायः घटती रहती हैं; किन्तु जेल की दीवार को फांदकर पांच साथियों को लेकर एक साथ निकल भागना और वह भी जयप्रकाश—जैसे आदमी के लिए—एक विचित्र बात थी।

विचित्र बात यह भी थी कि शाम को ये भागे और दूसरे दिन दोपहर तक जेल वालों को पता तक नहीं चल सका।

जो जेल में रह गये थे, उन साथियों ने ऐसा प्रबंध किया कि जहां हर दो घंटे पर कैदियों की गिनती होती है, वहां बीस घंटों तक इनके भागने का पता नहीं चल सका।

जब दूसरे दिन बारह बजे उनसे परामर्श करने जेल का सुपरिंटेंडेंट आया और उन्हें नहीं पाया तो उसे विश्वास भी नहीं हो रहा था कि जयप्रकाश भाग गये होंगे।

जब जेल की पहली घंटी बजी और घोषित किया गया कि जयप्रकाश जेल से भाग गये हैं तो वहां के सभी राजबंदियों को लगा, सरकार पागल हो गयी है क्या!

जब पुलिस सुपरिंटेंडेंट जेल के भीतर जांच-पड़ताल के लिए आया तो उसने भी कहा—"यह हो नहीं सकता कि जयप्रकाश भाग गये हों। आप लोग दिल्लगी कर रहे हैं!"

जयप्रकाश—इतने शांत, इतने शिष्ट! देश में जिनकी इतनी प्रतिष्ठा! गांधीजी ने जिन्हें समाजवाद का आचार्य कहा था! वह भाग जायें! राम, राम!

लेकिन, जो लोग ऐसा सोच रहे थे, और प्रायः सभी लोग ऐसा ही सोचते थे, वे नहीं जानते थे कि जयप्रकाश के हृदय में इस समय कौन-सी आग धू-धू कर रही थी।

जयप्रकाश ने देखा था, किस तरह प्रथम महायुद्ध (1914-18) के समय हम लोग देखते ही रह गये और कितने देश उससे फायदा उठाकर स्वतंत्र हो गये।

यदि दूसरे महायुद्ध में भी हम चूक गये तो हमारी गुलामी स्थाई-सी बनकर रह जायेगी।

अतः यों ही दूसरा महायुद्ध छिड़ा, उन्होंने आवाज लगायी—हमें आजादी की लड़ाई छेड़ देनी चाहिए।

रामगढ़ कांग्रेस के पहले ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से भी वह गुपचुप नेताओं के पास पत्र और अखबारों में लेख भेजकर इस बात पर बार-बार जोर देते रहे।

जब पहली सजा भुगतकर वह छूटे, देशभर में घूम-घूमकर इसके लिए संगठन करने लगे। किन्तु बम्बई में उन्हें फिर गिरफ्तार किया गया।

बम्बई से देवली कैम्प। देवली के वे खत—जिन्होंने एक बार भारत को हिला दिया था और अंततः तीन सप्ताह के अनशन के बाद देवली कैम्प को तुड़वाकर फिर हजारीबाग लौटे।

अगस्त आंदोलन के प्रारम्भ से ही वह इस चेष्टा में थे कि कैसे जेल से भागा जाय।

लेकिन एक पर एक विघ्न आते रहे। अंत में यह दीवाली!

और उसके बाद—

उन्होंने सारे भारत का दौरा किया—दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता और नेपाल।

नेपाल में गिरफ्तार हुए और आजाद दस्ते द्वारा उनका उद्धार किया गया। वह रोमांचकारी घटना तो अलग एक लेख की चीज है।

अब दूसरी दीवाली निकट पहुंच रही थी। जयप्रकाश का स्वास्थ्य खराब हो चुका था। सोचा गया, अगली दीवाली काश्मीर में मनायी जाय। वहां से लौटकर एक बार फिर होली जलाने की चेष्टा की जायेगी। देश को आजाद किये बिना चैन कहां!

दिल्ली स्टेशन पर, जब गाड़ी रवाना होने को है, एक साहब आकर एक फर्स्ट क्लास डब्बे में चढ़ जाते हैं। डब्बा रिजर्व है। उस पर कार्ड लगा है—एस. पी. मेहता।

भोर। अमृतसर। साहब चाय की चुस्की ले रहे हैं कि तीन सज्जन आ धमकते हैं—एक अंग्रेज, दो सिक्ख। तीनों खड़े हैं, उन्हें घूर रहे हैं।

"बैठिये! तशरीफ रखिए!"

"आप कहां जा रहे हैं?"

"रावलपिंडी।"

"आपका साथी कहां है?"

"साथी? मैं तो अकेला हूं।"

"तो आप सिर निकालकर किसे देख रहे थे?"

"आपको धोखा हो रहा है शायद।"

"यह नेपाल नहीं है!"

"नेपाल?"

"जी हां, आप बुरी तरह फंस गये हैं!"

"आप क्या कह रहे हैं? मैं तो बम्बई का एक व्यापारी हूं। मैं कभी नेपाल गया भी नहीं।"

"आप जयप्रकाश नारायण हैं।"

"जी नहीं, मैं हूं एस. पी. मेहता।"

"खैर, तलाशी दीजिए। आप जान गये होंगे कि हम पुलिस अफसर हैं। आज आप बच गये, यदि फिर सिर निकालते तो हम आपको शूट कर देते।"

तलाशी। गिरफ्तार। लाहौर फोर्ट। वह रौरव यातना। हाबियस कॉरपस। आगरा जेल। ब्रिटिश डेलिगेशन। गांधीजी की शर्त—पहले जयप्रकाश को छोड़ो। रिहाई।

चौदह वर्षों के बाद भी जब-जब दीवाली की याद आती है, हजारीबाग जेल में उस दिन राजबन्दी द्वारा गाये गये वे समवेत स्वर कानों में गूंजने लगते हैं—

"दीवाली फिर आ गयी, सजनी!"

और जब-जब जयप्रकाशजी को—उनके शांत, सौम्य, स्निग्ध चेहरे को देखता हूं, 1943 के वे शब्द तरंगित हो उठते हैं—"मैं हूं एस. पी. मेहता!" ❑

दलित-विमर्श

सुगंध का चर्मलेख

❑ पु. गो. वालुंजकर

सूरज उगने के ठीक पहले का दृश्य था। ऊपर आकाश में गिद्ध और नीचे जमीन पर सड़ते मांस की दुर्गंध मंडरा रही थी। एक युवक, धूल में लुथी धोती कस कर बांधे हुए, बड़ा-सा चाकू लिए वह एक मृत बैल के शरीर से जूझ रहा था। पसीने की कई धाराएं उसके सांवले, उघड़े गठीले बदन से टपक रही थीं। उसकी मदद कर रही थी उसकी पत्नी। खोंसकर पहनी हुई खादी की साड़ी, जूड़े में कसे हुए लंबे बाल, मांग में सिंदूर।

यहां क्या हो रहा है? एक राहगीर ने पूछा। ''इस मरे हुए बैल की खाल निकाल रहा हूं,'' काका वालुंजकर ने थोड़ा झिझकते हुए जवाब दिया। फिर उन्होंने समझाया कि मुरदार चमड़ा क्या होता है, क्योंकि वो राहगीर और कोई नहीं, ठक्कर बापा थे। वर्धा के सेवाग्राम में हरिजन सेवा के जाने-माने कार्यकर्ता। इस छोटी-सी मुलाकात का असर काका को अगले दिन पता चला। सेवाग्राम से संदेश आया :

''गांधीजी ने बुलाया है आपको।'' काका की तो मानो जान ही सूख गयी। विनोबा से उनके संबंध गहरे थे और गांधीजी तो उनके लिए पूज्य ही थे। उन्हें डर लगा, कहीं उनके काम से रोष तो नहीं होगा गांधीजी को। उनको ये काम करने से रोका तो नहीं जायेगा।

अगली सुबह काका समय से कुछ पहले ही गांधीजी की कुटिया के सामने पहुंच गये। ठीक सात बजे गांधीजी ने अपनी घड़ी में समय देखा, राजाजी को रवाना किया, और काका को बुला भेजा। *''ठक्कर बापा बता रहे थे कि तुमने मृत पशुओं की खाल निकालने का काम शुरू किया है,'' गांधीजी ने पूछा।*

काका ने हामी भरी और सर झुका कर कहा, ''पर बापू, ये काम मैंने विनोबा से पूछ कर ही शुरू किया है। और मैं हरिजन सेवा का काम भी कर रहा हूं।'' गांधीजी बोले, ''वो मुझे पता है। पर ये काम उससे भी ज्यादा जरूरी है।'' काका की सांस में सांस आयी।

फिर तो गांधीजी ने पूरा चर्मालय बनाने की योजना ही मांग ली। काका ने हिसाब लगाना शुरू किया। इतनी जगह, पानी की कुछ बड़ी-बड़ी टंकियां, दस एकड़ जमीन, लकड़ी के ड्रम...। ''कितना खर्चा होगा इस सब पर,'' गांधीजी ने पूछा। ''कोई एक लाख रुपये,'' काका ने अंदाजा लगाया। उन्हें शंका थी कि यह खर्च कहीं ज्यादा न लगे। गांधीजी ने कहा, ''हां, इतना तो लग ही जायेगा। मैं इस धन का इंतजाम करके तुम्हें ला दूंगा। तुम्हें इसकी रूपरेखा मुझे बारीकी से समझानी होगी, तुम्हारा बजट कितना है, जरूरत कितनी है।''

गांधीजी से मिलने जाते वक्त काका की जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। और अब बाहर जाते हुए वे लखपति हो चुके थे। काका को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। अपने ध्येय पर विश्वास उनका पूरा था। सही ही तो था, मृत पशु में भी लक्ष्मी को देखकर काका ने कोई गलती नहीं की थी।

काका मृत पशुओं की खाल से चमड़ा बनाना चाहते थे। एक ऐसा काम, जिसकी जरूरत पूरे समाज को थी पर जिसे करने से लोग घिनाते थे। यही नहीं, चमड़े का काम करने वालों को ही घृणा का पात्र बना दिया गया था, अछूत मान लिया गया था उन्हें। अब एक ब्राह्मण चर्मकार का काम करने निकल चला था। इस घृणित माने गये काम को अपने मन से छूकर निर्मल बनाने और जो लोग सदियों से इसे कर रहे थे, उनकी निर्मलता बताने।

और ये काम दो-चार दिन झंडा फहराने के लिए नहीं। उन्होंने तो इसे फिर जीवन-भर किया। गरिमा से, सफलता से। इतना कि *गोपाल राजाराम वालुंजकर के नाम ने चर्मकारी में अहिंसक संस्कार की खुशबू डाल दी। ये सुगंध आज भी कई लोगों के मन में बसती ही है, देश भर के कुछ अहिंसक चर्मालय में भी। काका वालुंजकर का काम कई पैरों में अहिंसक चमड़े के रूप में आज भी चलता है, उन्हें रास्ते की विषमताओं से बचाता है, उनके मन से घिन को थोड़ा हटाता है। दूरियां जरा कम करता है। हमें चर्मकारों के काम का मूल्य बताता है, उनके परिश्रम के प्रति कृतज्ञ बनाता है।*

घृणा में, दुर्गंध में सुगंध ढूंढ़ने का ये स्वभाव काका वालुंजकर के बचपन और हमारे देश की आजादी के आंदोलन से ढला था। सन् 1910 में वे नासिक के एक मिडल स्कूल में पढ़ रहे थे और हर महीने आठ आने की छात्रवृत्ति पाते थे। अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ एक जुलूस में भाग लेने की वजह से प्राध्यापक ने उन्हें तलब किया और माफी मांगने को कहा। 10 वर्ष के बालक ने माफी मांगने से मना कर दिया और उलटे प्राध्यापक से न्याय की उस लड़ाई में साथ देने का निवेदन किया। स्कूल ने काका को निकाल दिया।

उनके पिता की मृत्यु तीन बरस पहले ही हो गयी थी। अब काका बड़े भाई के पास जलगांव चले गये और मराठी, हिंदी और अंग्रेजी की पढ़ाई करने लगे। जैसा कि उस समय के ब्राह्मण परिवारों में होता था, काका वालुंजकर ने संस्कृत की शिक्षा पायी। सनातनी और वैदिक अनुष्ठान सीखे, उपनिषदों की, गीता की पढ़ाई की। सन् 1917 में काका पुणे के फर्ग्यूसन कॉलेज में भर्ती हुए। उनके सहपाठियों के जैसे काका के पास बाहर भोजन करने के पैसे नहीं थे। उन्होंने अपने मित्रों को घर पर भोजन पकाने के लिए मना तो लिया था, पर सब लोगों का खाना उन्हें अकेले ही अपने कमरे में मुंह-अंधेरे पकाना पड़ता था। दिन में पढ़ाई और रात में कोयला लेने जाना होता था। परिश्रम की आदत पड़ गयी थी।

इस समय देश और दुनिया का राजनीतिक माहौल गरम रहा था। पहला विश्वयुद्ध चल रहा था। रूस में क्रांति हो गयी थी। लोकमान्य तिलक मांडले से वापस आ गये थे। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सफल प्रयोग के बाद भारत आ हिन्द के स्वराज में जुट गये थे। गांधीजी ने असहयोग आंदोलन की पुकार की तो काका ने अपने भाई को आंदोलन में काम करने का निर्णय बताया। भाई ने समर्थन किया। काका पढ़ाई छोड़ स्वराज की राह पर चल पड़े।

गांधीजी ने देशी विद्यालय खोलने का प्रस्ताव लोगों के सामने रखा था। विनोबा इसी में जुट गये थे। काका ने भी ऐसा ही एक विद्यालय खोला पुणे में और तभी खादी पहनने का व्रत लिया। शायद इसी समय विनोबा से उनकी पहली भेंट हुई। विनोबा ने भाई से देश के लिए उनके छोटे भाई को मांग लिया। भाई ने केवल एक शर्त रखी— काका विवाह कर लें। विनोबा की सलाह से काका का विवाह गंगूबाई उधालिकर से हुआ। विनोबा काका के मार्गदर्शक बन गये और ये संबंध जीवन भर चला।

काका सपत्नीक वर्धा के सेवाग्राम पहुंच गये। सन् 1924 में उनका पहला काम था महाराष्ट्र धर्म नामक साप्ताहिक का प्रबंध और संपादन। फिर विनोबा के साथ आश्रम के खेतों में कृषि विद्या प्रयोग में लगे और फिर हरिजन सेवा में काका ने उस दौर में 33 मंदिर और 209 कुएं हरिजनों के लिए खुलवाए थे।

इसी दौरान नमक सत्याग्रह और सार्वजनिक अवज्ञा आंदोलन शुरू हुए। जेल यात्राओं के बाद विनोबा के साथ काका भी नलवाड़ी में टिक गये। यहीं पर सन् 1934 में काका को एक मृत बैल का शरीर मिला। कोई उसे छूने को भी तैयार नहीं था। काका के मन में प्रश्न उठा : क्या हम इस पशु की खाल से जूते नहीं बना सकते? उस बैल के जीवनहीन शरीर में काका को लक्ष्मी के दर्शन हुए।

7 सितंबर 1934 को गांधीजी ने 'हरिजन' में लिखा था कि अगर हम गाय-बैलों की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें उन्हें ठीक से खिलाना चाहिए और उनकी मृत्यु के बाद उनके शरीर के हर भाग का उपयोग करना चाहिए। इसके एक महीने पहले 1 अगस्त 1934 को, काका पहली बार एक मृत बैल का चमड़ा निकाल चुके थे।

मुरदार या अहिंसक चमड़े को लेकर कई लोगा काका के विचारों से सहमत नहीं थे। लोगों को लगता था कि इससे हरिजन सेवा के काम पर बुरा असर पड़ेगा। पर काका के समझाने पर विनोबा भी उनके साथ हो गये। काका दो अनुभवी चर्मकारों को मनाकर अपने साथ आए और अहिंसक चमड़े से जूते बनाने लगे। जब कभी रुपये-पैसे की जरूरत पड़ती, काका कहीं न कहीं से मदद ले आते। पर चर्मालय का काम जल्दी ही अटकने लगा।

बाबा साहेब अंबेडकर ने हरिजनों के उत्थान के लिए आंदोलन छेड़ दिया था। उनका कहना था कि जब तक हरिजन चर्मकारी जैसे काम छोड़ नहीं देंगे, उनकी स्थिति कमजोर ही बनी रहेगी। उनके आह्वान पर कई जगहों पर हरिजनों ने मृत पशुओं का चमड़ा निकालने से मना कर दिया था। ऐसे में कई जगह पशुओं के शरीर पड़े सड़ रहे थे। वातावरण दूषित हो रहा था।

काका को लगा कि अगर यह करने लायक काम है तो इसे खुद ही करना चाहिए। वे धर्म और कर्म से चर्मकारी में लग गये। इस विषय पर सामग्री इकट्ठी करनी शुरू कर दी और पढ़ाई करने लगे। नलवड़ी आश्रम के एक निर्जन कोने में काका ने अपना काम चालू किया। जब कभी किसी पशु के मरने की खबर आती, वो उसके शरीर को लिवाने के प्रबंध में लग जाते। जैसे ही जानवर का शरीर आता, काका उसी समय काम पर लग जाते ताकि चमड़े को सड़ने से बचाया जा सके। फिर चाहे वो दिन हो या रात।

जब कभी अटपटे समय की वजह से कोई सहायक नहीं मिलता तो गंगूताई उनकी मदद करने पहुंच जातीं। दृश्य काफी विचित्र होता : एक ब्राह्मण दंपत्ति चांदनी रात में एक निर्जन स्थान पर एक मृत बैल का चमड़ा निकाल रहे हैं!

काम करते-करते निखरने लगा। जल्दी ही उन्हें काम करने के अच्छे तरीके पता चलते गये। पशु के शरीर को घसीट कर लाने से चमड़े फट जाता था। अब बिना चाकू की नोक से भेदे चमड़ा निकालना उन्हें आ गया था। चमड़ा निकालने के बाद उसे नमक लगाकर काफी समय रखना पड़ता था। फिर पेड़ों की छाल, हरड़ और चूने से उसको पकाना पड़ता था। इस सबके लिए बहुत पानी, खूब जगह, कारीगर और थोड़े पैसों की जरूरत थी।

इसी समय ठक्कर बापा ने एक सुबह काका और ताई को चमड़ा निकालते हुए देखा और यह मामला गांधीजी तक पहुंच गया। कुछ महीने में ही काका को चर्मालय को बढ़ाने चलाने का धन मिल गया। गोपुरी और नलवाड़ी के बीच साढ़े सात एकड़ जमीन वर्धा-नागपुर रोड पर खरीदी गयी चर्मालय बनाने के लिए। *...क्रमशः अगले अंक में*

संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच की बैठक सम्पन्न

संपूर्ण क्रांति राष्ट्रीय मंच के संयोजक भवानी शंकर 'कुसुम' की उपस्थिति में 5 सितंबर 2016 को गांधी संग्रहालय, पटना में प्रदेश सम्मेलन आयोजित किया गया। अध्यक्षता रमण कुमार ने की।

विषय प्रवेश कराते हुए भवानी शंकर ने कहा कि दलितों पर अत्याचार बढ़े हैं। इस अवसर पर डॉ. रामजी सिंह, रामशरण, प्रभाकर, अख्तरी बेगम, दिनेशचंद्र, प्रो. प्रकाश, रमेश पंकज, विजय, उपेन्द्र, रमेशचन्द्र, चन्द्रभूषण, श्रीनाथ प्रसाद, लालदेव, रामपूजन आदि ने भी अपने विचार रखे। रमण कुमार को प्रांतीय संयोजक घोषित किया गया और 15 सदस्यीय राज्य समिति गठित की गयी। **–निर्मल चन्द्र**

विश्व की भलाई की चिन्ता करता है भारतीय संविधान

❑ जगदीश गांधी

आज कठोर तथा कड़े हृदय के लोगों की संख्या तेजी से बढ़ती दिखायी दे रही है। हर क्षेत्र में उनका प्रभाव दिखायी देता है। धर्म-जाति के नाम पर ये कठोर हृदय के लोग किसी भी सीमा तक मानव-जाति को नफरत तथा विनाश की आग में झोंकने को तैयार हैं। इस बढ़ते प्रभाव को देखकर सामान्य व्यक्ति में निराशा व्याप्त होना स्वाभाविक है। इस विषम समय में प्रभु यीशु का स्मरण आता है। यीशु ने कहा था कि जो सीजर (उस समय का राजा था) का है, उसे राजा को दे दें तथा जो प्रभु का है उसे प्रभु को समर्पित कर दें। अर्थात राजा का इस शरीर से जुड़ी चीजों अर्थात पद, सम्पत्ति, धन, वैभव, मान-सम्मान आदि पर तो अधिकार हो सकता है अतः उसे राजा को दिया जा सकता है। किन्तु मेरा हृदय प्रभु का है उस पर राजा का नहीं केवल प्रभु का ही अधिकार है।

उस समय तो एक ही राजा सीजर था। पर आज चारों तरफ बन्दूक, लाठी, बमवाले राजा ही राजा दिखायी देते हैं। मोहल्ले—शहर के दादा, कालेजों के दादा ये सभी आज के राजा हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में देखें तो अमेरिका सबसे ज्यादा बम बनाकर सबसे बड़ा दादा है। शरीर से ज्यादा हमें अपनी आत्मा की रक्षा की चिन्ता हर पल तथा हर परिस्थिति में करनी चाहिए। *ईश्वर की राह पर कितने भी कष्ट आये हमें उन्हें हँसते हुए सहना चाहिए। संसार के पास जो है वहाँ से हमें वही तो मिलेगा और जो ईश्वर के पास प्रेम है उससे जुड़कर हमें प्रेम ही प्रेम मिलेगा।* भीष्म पितामह हस्तिनापुर राष्ट्र की रक्षा की प्रतिष्ठा करके कौरव के विनाश का सबसे बड़ा कारण बने। *ईश्वर की आज्ञाओं के पालन की प्रतिज्ञा के अलावा मनुष्य की कोई दूसरी प्रतिज्ञा नहीं होनी चाहिए।* कंस तथा रावण महाविद्वान् होते हुए भी भगवान के विरोधी बनकर विनाश का कारण बने। चारों वेदों का ज्ञाता अर्जुन शरणागत होने के कारण बच गया। वरना उसको भी भीष्म, कंस, रावण की तरह परिणाम भुगतने पड़ते। ऊंचा उद्देश्य परमात्मा की निकटता है। बम बनाना पिशाची ताकत है। बम से लाखों बच्चे अनाथ हो जाते हैं। लाखों महिलाएं विधवा हो जाती हैं। हिरोशिमा-नागाशाकी का विनाश मानव-जाति अभी भूली नहीं है।

आज विश्व के राष्ट्रों की संकुचित राष्ट्रीयता ने सभी समस्याओं का हल बम व युद्ध से निकालने का समाधान खोज लिया है। भारत विश्व का जगतगुरु है। आज हमें अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं संविधान के अनुरूप सारी वसुधा को कुटुम्ब बनाना है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51 प्रत्येक नागरिक को इस बात के लिए बाध्य करता है कि वह सारे विश्व की भलाई के लिए जीवन पर्यन्त कार्य करे। अनुच्छेद 51 में राज्य अर्थात् प्रत्येक नागरिक का उत्तरदायित्व है कि वह (1) सभी राष्ट्रों में शांति और सुरक्षा के लिए प्रयत्न करेगा, (2) राष्ट्रों के बीच न्यायप्रिय तथा सम्मानजनक संबंध नहीं है। वह न्याय संगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाये रखने का प्रयत्न करेगा, (3) संसार में प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय कानून बनाने वाली वर्ल्ड पार्लियामेंट हो जिसके बनाये कानून प्रभावशाली ढंग से सारे विश्व में लागू हो सके जो तोड़े उसे दण्डित किया जा सके और (4) विभिन्न देशों के बीच के मतभेदों को मध्यस्थता के द्वारा दूर करने का प्रयत्न करेगा। मध्यस्थता करनेवाली संस्था वर्ल्ड पार्लियामेण्ट बनाने का प्रयत्न करेगा जो अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निपटारे के लिए बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय कानून बना सके। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 51 केवल भारत के लिए ही नहीं सारे विश्व की भलाई के लिए हमें संकल्पित होने की प्रेरणा देता है।

जब-जब धर्म की हानि होती है, संसार में असुर, अधर्म एवं अन्यायी प्रवृत्तियों के लोगों की संख्या सज्जनों की तुलना में बढ़ जाने के कारण धरती का संतुलन बिगड़ जाता है। तब-तब परमपिता परमात्मा कृपा करके धरती पर अपने प्रतिनिधि को मानवता का कल्याण करने के लिए युग-युग में विविध रूपों में भेजते हैं। परमपिता परमात्मा की ओर से कभी राम मर्यादा का पाठ पढ़ाने, कृष्ण न्याय की स्थापना के लिए, बुद्ध अहिंसा की शिक्षा देने, यीशु करुण का सागर बहाने, मोहम्मद मित्रता का संदेश लेकर, नानक त्याग-सेवा की सीख देने आते हैं। अर्थात *राम ने मर्यादा, कृष्ण ने न्याय, बुद्ध ने करुणा, ईसा ने प्रेम, मोहम्मद साहब ने मित्रता, नानक ने सेवा तथा बाब-बहाउल्लाह ने विश्व एकता का संदेश दिया। किसी भी महान् अवतार की शिक्षा किसी एक देश तथा जाति के लिए नहीं है। उनकी शिक्षाएं सारे संसार के लिए तथा सारी मानव-जाति के लिए है।*

इसी प्रकार पवित्र ग्रंथ हमें वसुधैव कुटुम्बकम् का संदेश सदैव से दे रहे हैं। *रामायण हमें 'सीया राम मय सब जग जानी' का, गीता हमें 'सर्व भूत हिते रतः' का, बाईबिल हमें 'अपने पड़ोसी से अपने जैसा प्रेम करने' का, कुरान हमें 'ये खुदा सारी खिलकत को बरकत दे' का, गुरु ग्रंथ साहिब 'एक नूर से सब जग उपजा' का संदेश देते हैं। आइये, हम अपने महान् अवतारों की मर्यादा, न्याय, अहिंसा, करुणा, मित्रता, त्याग-सेवा तथा सभी धर्मों की एकता की शिक्षाओं को अपनाकर भारतीय संस्कृति के मूलमंत्र वसुधैव कुटुम्बकम् की एक सुन्दर मिशाल सारे संसार के समक्ष प्रस्तुत करें।* ❑

'जयप्रकाश पुण्यतिथि के दिन अवैध कब्जेदारों से गांधी विद्या संस्थान को मिली मुक्ति'

गांधीजनों ने मनायी जेपी जयंती : संगोष्ठी आयोजित

'स्थानीय प्रशासन, समाजवादी सरकार एवं मीडिया को दी हार्दिक बधाई!'

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की 115वीं जयंती 11 अक्टूबर की पूर्व संध्या पर सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी के 'विनोबा सभागार' में आयोजित समारोह में देशभर से आये गांधीजनों और गांधी विद्या संस्थान के कर्मचारियों ने जेपी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया। जेपी के मंचों से 1974 में क्रांतिगीत गाने वाले साथी अशोक मोती ने सम्पूर्ण क्रांति के दिनों के लोमहर्षक गीत गाये।

इस अवसर पर आयोजित '21वीं सदी और गैरदलीय लोकतंत्र' विषयक संगोष्ठी में विषय प्रवेश कराते हुए गांधी विद्या संस्थान के प्रो. सुनील सहस्रबुद्धे ने कहा कि यह हर्ष का विषय है, जब हम गांधी विद्या संस्थान पर हुए कब्जे से मुक्ति की ओर बढ़ रहे हैं। दरअसल यह बहुत पुरानी कोशिश का हिस्सा रहा है। ये वही लोग हैं, जो भौतिक वस्तुओं पर कब्जा करने के बहाने विचार पर कब्जा करने की निरर्थक कोशिश करते हैं। गैरदलीय लोकतंत्र की कल्पना जब गांधी ने की थी, तब बहुत पढ़े-लिखे लोगों को भी यह बात समझ में नहीं आयी थी, लेकिन अब एक लंबा अरसा बीत जाने के बाद दलीय लोकतंत्र के साये में जीते हुए गांधी की बात सबके समझ में आने लगी है। किशन पटनायक राजनीतिक दलों की राजनीति को गिरोहों की राजनीति कहते थे। यह सही है कि आज राजनीतिक दलों का पर्याय या विकल्प आमतौर पर दिखायी नहीं देता। राजनीतिक दलों ने हमारे लोकतंत्र का जो नुकसान किया है, उसके सापेक्ष हमारे पास आज जेपी का सहारा है। लोकतंत्र के विचार को आज स्वराज के विचार में समाहित किये जाने की जरूरत है, तभी गैरदलीय लोकतंत्र की भूमिका बनेगी। गांधी, विनोबा, जेपी, लोहिया की परंपरा ने जो पुनर्रचना की उसे आज समग्रता में समझने की जरूरत है।

महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के इतिहास विभाग के प्रोफेसर महेश विक्रम ने कहा कि समाज में अपनी गड़बड़ियों को स्वयं प्रेरित प्रवाह से संतुलित करने की शक्ति होती है। विडम्बना है कि समाज आज आत्मसंशय का शिकार है। आजादी की लड़ाई के अनुभवों से गुजरकर हमारे समाज नेताओं ने राष्ट्रीय जीवन के कुछ नियम तय किये थे, लेकिन समाज ने उन सिद्धांतों की तिलांजलि दे दी। दलीय राजनीति को इस पतन ने समाज का सहयोग किया। स्वमूल्यांकन की कोई प्रक्रिया भी चली होती तो समाज इस दुर्दशा का शिकार नहीं हुआ होता।

गांधी विद्या संस्थान के डॉ. शिव स्वारथ सिंह ने कहा कि लोकतंत्र शासन की अच्छी पद्धति है लेकिन अब तक आजमायी हुई पद्धतियों की विफलता और बुराइयों के सापेक्ष ही। दलीय लोकतंत्र ने समाज का समग्र मस्तिष्क यथास्थितिवादी बनाया है। यह हमारे सकल राष्ट्रीय जीवन का नुकसान है।

अशोक मोती, कार्यकारी संपादक 'सर्वोदय जगत' ने गैर दलीय लोकतंत्र के स्याह सफेद पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गैर दलीय लोकतंत्र की कल्पना गांधी के उस आखिरी वसीयतनामे के साथ शुरू होती है, जिसमें वे राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस को विसर्जित करने की मांग करते हैं। गैर दलीय राजनीति का पर्याय है लोकनीति। राजनीति को लोकनीति की ओर ले जाने के लिए आध्यात्मिक स्पर्श की जरूरत है। यह आध्यात्मिक स्पर्श गांधी, विनोबा और जयप्रकाश के बाद समाप्तप्राय हो गया। लोकनीति का आशय है कि राज्य की शक्ति नहीं रहे, लोक की शक्ति की स्थापना हो। जेपी ने लोकसमितियों की स्थापना की बात कही थी।

अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने कहा कि 1962 में चीनी आक्रमण के दौरान चीनी सेना असम पर कब्जा करने ही वाली थी। दिल्ली के एक पत्रकार ने असम के एक मजदूर से पूछा कि चीन कब्जा करने वाला है, तुम्हें क्या कहना है। उस मजदूर ने कहा कि क्या फर्क पड़ता है साहब। हम आज भी पत्थर तोड़ते हैं, तब भी तोड़ा करेंगे। चीन वाले को क्या मजदूरों की जरूरत नहीं पड़ेगी। आर्थिक आधार पर समाज बंटता चला गया है, यह दलीय लोकतंत्र की एकमात्र उपलब्धि है। दलीय लोकतंत्र से मुक्ति इस स्थिति से उबरने और देश में लोकनीति की स्थापना की दिशा में सार्थक कदम होगा। जब तक आर्थिक आजादी नहीं मिलती, राजनीतिक आजादी का कोई मतलब नहीं है।

संगोष्ठी में आनंद प्रकाश तिवारी, शिवविजय सिंह, जागृति राही आदि ने भी अपने विचार रखे। सर्व सेवा संघ परिसरवासी और गांधी विद्या संस्थान के कार्यर्ताओं के अतिरिक्त स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ताओं और चिन्तकों ने हिस्सा लिया।

संचालन एवं धन्यवाद गांधी विद्या संस्थान की कुलसचिव डॉ. मुनीजा रफीक खान ने किया। समापन अशोक मोती के गीत 'संपूर्ण क्रांति अब नारा है, भावी इतिहास हमारा है' के साथ हुआ।

–स. ज. प्रतिनिधि

दोहा

पर्यावरण

❑ डॉ मेहता नगेन्द्र सिंह

सौर-जगत में निज धरा, है अदभुत यह जान।
केवल इसके थाल में, मिलता मनुज महान।।
नदी किनारे सभ्यता, उपजी पहली बार।
साथ-साथ विकसित हुआ, मानव का संसार।।
मानव करता है अधिक, धरती का उपभोग।
दोहन का कारक यही, ऐसा है संयोग।।
धूल-धुआं से भर गया, यह नीला आकाश।
मैली हालत देखकर, धरती हुई उदास।।
बंजर धरती रो रही, सिसक-सिसक बेजार।
इसको केवल चाहिए, हरियाली का प्यार।।
धरती मां के वक्ष पर, कैसे पड़ी दरार।
कारक इसका कौन है, पूछ रहा संसार।।
पादप खड़ा पहाड़ पर, है बरसाता मेघ।
वृक्षविहीन पहाड़ पर, कभी न छाता मेघ।।
मेघ बिना बारिश नहीं, कैसे उपजे धान।
ताक रहा आकाश को, धरती-पुत्र किसान।।
पादप की पूजा करें, देता जीवन-दान।
इसीलिए यह जान लें, होता वृक्ष महान।।
धुआं उगलती चिमनियां रहती हैं दिनरात।
अक्सर करती हैं यहां, अम्लों की बरसात।।
अम्लों की बरसात से, होता नष्ट अनाज।
दीप्ति, धवलता खो रहा, शाहजहां का ताज।।
फैल रहा अपशिष्ट का, इस धरती पर जाल
इसके कारण हर तरफ, जीवन है बेहाल।।
दूषित पानी से सदा, होता पेट खराब।
उससे बचने के लिए, रखें साफ तालाब।।
ध्वनि प्रदूषण बढ़ रहा, उपासना के धाम।
पॉप गीत पर नाचता, पीकर सस्ता जाम।।
अधिक शोर से कान का, होता बंटाढार।
इस कारण अब शोर का, बंद करें बाजार।।
झोंका दूषित वायु का, मचा रहा उत्पात।
श्वास-क्रिया में कष्ट दे, चलता है दिनरात।।
वायु प्रदूषण से यहां, संकट में है प्राण।
हार गये मानव सभी, मदद करो भगवान।।
जनसंख्या की बाढ़ से, बढ़ी गरीबी आज।
दाने-दाने के लिए, होगा विकल समाज।।
है मिट्टी के स्वास्थ्य पर, चढ़ी रसायन खाद।
अधिक फसल उपजी नहीं, खेत हुआ बरबाद।।
पतझड़ की तलवार से, बना वृक्ष सब ठूंठ।
फिर भी, हम पकड़े रहे, नित कुठार की मूठ।।
हरियाली विधवा हुई, उजड़े सारे खेत।
हरी-भरी फसलें गयीं, लगी झलकने रेत।।
वृक्ष हरा तो तन हरा, मन को देता चैन।
हरियाली के पुंज से, ऊर्जा पाता नैन।।
चलती आरी देखकर, वृक्ष हुआ भयभीत।
लाख आरजू की मगर, दिखा न कोई मीत।।
बोतल में बिकने लगा, नदी-कूप का नीर।
आगे बिगना शेष है, भरसक धूप, समीर।।
बिना स्वच्छ पर्यावरण, जीना है दुश्वार।
शीघ्र प्रदूषण का यहां, बंद करें व्यापार।।
स्वस्थ रहे जीवन सदा, ऐसा कर कुछ काम।
कुदरत को महफूज कर, अर्जित कर ले नाम।।
बिगड़ा मौसम किस कदर, हुआ सभी को भान।
फिर भी हम चेते नहीं, बने रहे नादान।।

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।